जागोरी की त्रैमासिक पत्रिका
अक्तूबर-दिसम्बर 2009

हम सबला

इस अंक में

सार्वजनिक जगहों पर महिलाओं की सुरक्षा

हम सबला

अक्तूबर-दिसम्बर 2009

अतिथि संपादक
कल्पना विश्वनाथ

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
कल्याणी
सीमा श्रीवास्तव
रत्नमंजरी

मुख पृष्ठ व अन्य फोटो
जागोरी

सज्जा व मुद्रण
सिस्टम्स विज़न
दूरभाष 26811195
systemsvision@gmail.com

बी-114, शिवालिक, मालवीय नगर
नई दिल्ली 110017
ई-मेल jagori@jagori.org
वेबसाइट www.jagori.org
दूरभाष 26691219, 26691220
हेल्पलाइन 26692700

इस अंक में

हमारी बात — कल्पना विश्वनाथ व सुरभि टंडन मेहरोत्रा — 1

लेख
- दोहरा बोझः राजधानी का कठोर जीवन — कल्पना शर्मा — 6
- 'लेडीज़ स्पेशल' पर सवार — श्रेया भट्टाचार्य — 8
- शहर से निकाले — सुरभि टंडन मेहरोत्रा — 12

कहानी
- मेरा घर कहां? — नासिरा शर्मा — 20

कविता
- सीता बोल — बीना अग्रवाल — 16
- नारी शरीर पर अत्याचार — ज्योति महापसेकर व छाया राजे — 29

आमने-सामने
- बस अब बहुत हुआ... — अमृता नंदी-जोशी — 17
- क्यों होती है 'ईव-टीज़िंग'? — सुनीता ठाकुर — 26

अभियान
- महिलाओं के लिए *सुरक्षित दिल्ली अभियान* — जुही जैन — 30
- देश-विदेश में — 32

पैनल
- ताई — सहजो सिंह — 11
- पप्पू — " — 19
- ट्रिंग-ट्रिंग — " — 25

कानून
- यौन उत्पीड़न कानून — 33

फ़िल्म समीक्षा
- ज़ोर से बोल — सीमा श्रीवास्तव — 35

पुस्तक परिचय
- इज़ दिस ऑवर सिटीः मैपिंग सेफ़्टी फ़ॉर विमेन इन देल्ही — जुही जैन — 37

पाठकों के विचार — 40
- महिला भी इंसान है — चित्रा पंचकर्ण — 39

हमारी बात

क्या शहर सुरक्षित है?

पिछले कई महीनों से सुर्खियों में कुछ ऐसे मामले रहे हैं जो शहरों में औरतों की सुरक्षा को लेकर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। इनमें मुंबई के होटल के बाहर पुरुषों के एक गुट द्वारा दो महिलाओं के साथ यौन हिंसा की वारदात शामिल है। एक दूसरा किस्सा दिल्ली विश्वविद्यालय के साइबर कैफे में दो छात्राओं के उत्पीड़न का है। एक महीने की अवधि के अन्दर हमने गुड़गांव मॉल के बेसमेंट में एक महिला के साथ यौन हिंसा, उदयपुर के होटल मालिक द्वारा अंग्रेज़ महिला पत्रकार के साथ बदसलूकी और कोची में सैलानियों पर भीड़ द्वारा हमले के किस्से भी सुने हैं। ये सभी मामले सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं पर हिंसा की सच्चाई से हमें रूबरू कराते हैं।

हालांकि अखबारों में हिंसा के दिल दहला देने वाले किस्से रोज़ाना पढ़ने को मिलते हैं पर महिला हिंसा को परिभाषित करने वाला मुख्य तथ्य है- हिंसा का सतत व आम-साधारण स्वरूप। हिंसा के इस 'आम-रोज़मर्रा' के 'नॉर्मल' चरित्र पर ही हमें अपना ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। रोज़मर्रा के जीवन में होने वाली हिंसा की धारणा औरतों के दैनिक जीवन व अनुभव को नियंत्रित करने के तरीकों पर केंद्रित होती है। समाज में औरतें एक कमज़ोर समूह के रूप में देखी जाती हैं जहां पितृसत्तात्मक हिंसा का इस्तेमाल उन्हें नियंत्रित, दरकिनार व हक़ों से महरूम रखने के लिए किया जाता है। औरतों के लिए केवल शारीरिक हिंसा ही नहीं, बल्कि खासतौर पर यौन हिंसा का डर भी सर्वोपरि होता है। यह डर औरतों के मन में अपने शरीर को लेकर पितृसत्तात्मक सोच से जुड़ा है जहां परिवारों के लिए औरतों की इज़्ज़त और शर्म खो जाने का डर भी शारीरिक हिंसा का शिकार होने के बराबर ही माना जाता है।

हालांकि इस सच को स्वीकार कर लिया गया है कि सार्वजनिक स्थलों में महिलाओं पर हिंसा विश्वव्यापी है पर इसे कैसे सम्बोधित करना है इस पर विचार अभी हाल ही में शुरू हुआ है। इसके लिए आवश्यक है कि हिंसा को सतत बनाने वाले कारणों को पहचाना जाये। इस लेख में प्रस्तुत हमारे विचार जागोरी की शोध पर आधारित हैं जिसमें सार्वजनिक स्थानों को असुरक्षित बनाने तथा हिंसा व हिंसा के डर से शहरी सार्वजनिक जीवन में पूर्ण भागीदारी के हक़ से महिलाओं को वंचित करने वाले कारणों की समीक्षा की गई थी। इस शोध अध्ययन के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया में 'सेफ़्टी ऑडिट' या सुरक्षा जांच शामिल है जिसमें किसी जगह को सुरक्षित व असुरक्षित बनाने वाले कारणों को आंका जाता है। इस जांच में जगह के माहौल, भौतिक ढांचे (रोशनी, पेड़, पारपथ, पार्क आदि), पुलिस व टेलिफोन बूथ, दुकानदारों की मौजूदगी आदि बातें परखी जाती हैं जिससे पुरुष केंद्रित व औरतों के लिए उपयुक्त जगहों को पहचाना जा सके। जागोरी ने तकरीबन छः सौ महिलाओं का साक्षात्कार भी किया जिसमें अलग-अलग वर्ग, उम्र व जगहों से आने वाली औरतें शामिल की गईं, जिससे औरतों के नज़रिये से उनके हक़ व इन जगहों तक उनकी पहुंच की समझ बनाई जा सके। शोध में शहर के अलग-अलग स्थान जैसे मध्यमवर्गीय रिहाइशी कॉलोनी, पुनर्वास बस्ती, बाज़ार, मेट्रो स्टेशन, व्यवसायिक क्षेत्र, शैक्षिक कैम्पस, रेलवे स्टेशन व औद्योगिक क्षेत्र शामिल किए गये थे।

शोध से यह पता चला कि शहर की अधिकांश महिलाओं को हिंसा की संभावना का डर सताता है। पर इस डर का अनुभव उनके रहने व काम की जगह व यातायात पर निर्भर होता है। हम इस बात को भी स्वीकारते हैं कि शहरी स्थलों में सिर्फ़ लैंगिक भेदभाव ही नहीं होता। इसके साथ-साथ उम्र, सामाजिक वर्ग, रोज़गार, वैवाहिक दर्जा, विकलांगता आदि अन्य पहचानें भी भेदभाव का कारण बनती हैं।

बसों में सफर करने वाली औरतों के अनुभव कार में चलने वालों से अलग होते हैं। इसी तरह बस्ती या पुनर्वास क्षेत्र में रहने वाली व मध्यमवर्गीय रिहायशी इलाकों की औरतों के सामने अलग-अलग चुनौतियां होती हैं। मध्यमवर्गीय इलाके में रहने वाली औरतों तथा सेवाएं प्रदान करने वाली कामकाजी महिलाओं के भी सुरक्षा से जुड़े सरोकार भिन्न होते हैं।

शोध ने इस बात को उजागर किया है कि औरतें अक्सर खुद को तथा समाज उन्हें सार्वजनिक स्थलों के अवैध उपयोगकर्त्ता के रूप में देखता है। यहां तक कि जब औरतें सड़क पर किसी 'वैध' कारण से दिखाई देती हैं जैसे काम पर जाने के समय तब भी वे अपनी नज़रें नीची रखती हैं या फिर पुरुषों को निकलने-चलने के लिए जगह देती रहती हैं। यह व्यवहार इस सोच का प्रतीक है कि सार्वजनिक क्षेत्र पर तुलनात्मक रूप से पुरुषों का औरतों से ज़्यादा हक़ होता है। लंदन व जेरूसलेम में सार्वजनिक जगहों के उपयोग पर की गई एक तुलनात्मक शोध में यह पाया गया कि दोनों शहरों की औरतों के मन में हिंसा का खौफ़ उनके वैवाहिक दर्जे, राष्ट्रीयता और यौन झुकाव के दायरों के बाहर एक समान था।

सार्वजनिक जगहों पर औरतों की मौजूदगी व पहुंच समय, जगह व वजह जैसे कारणों पर निर्भर करती है। बिना बंदिश व रोक-टोक के सार्वजनिक स्थलों के उपयोग के लिए औरतों के पास 'जायज़' कारण होने चाहिए। यानी बच्चों को छोड़ना-लाना, पढ़ने या नौकरी पर जाना, पार्क में चलना (उचित समय पर) या खरीददारी करना (कुछ विशेष समय पर) आदि वैध कारण माने जाते हैं। इस वैधता का अर्थ यह नहीं कि इस समय हिंसा नहीं की जा सकती पर ये वजहें उन्हें 'शरीफ़' और 'इज़्ज़तदार' औरतों की श्रेणी में स्थान ज़रूर दिला देती हैं। यानी काफी ऐसी जगहें हो सकती हैं जिन्हें महिलाएं दिन में तो उपयोग कर पाती हैं, परन्तु रात को वे उनकी पहुंच और मौजूदगी के लिए उपयुक्त नहीं समझी जातीं। औरतों से अपनी आवाजाही के लिए समय और जगह की उपयुक्तता पर ध्यान देने की अपेक्षा की जाती है।

औरतें हिंसा से किस प्रकार निपटती हैं या उसे कैसे लेती हैं यह "सम्मान" की विचारधारा के दायरे पर निर्भर करता है। अधिकतर समय महिलाएं हिंसा की रपट पुलिस में दर्ज नहीं करातीं क्योंकि उन्हें सार्वजनिक स्थल पर मौजूद होने के 'जायज़' कारण पेश करने पड़ते हैं। युवा लड़कियां अक्सर अपने माता-पिता से उत्पीड़न का ज़िक्र नहीं करतीं क्योंकि ऐसा करने से उनकी आवाजाही पर रोक लगाई जा सकती है। औरतें ज़्यादातर ऐसे फ़ैसले करती हैं जिनमें यह समझ निहित होती है कि उनके पास सार्वजनिक स्थल पर होने की कोई जायज़ वजह है।

कॉलेज में पढ़ने वाली एक युवा लड़की बताती है, "मैं बस या ऑटो का इंतज़ार करते समय हमेशा बस स्टॉप पर ही खड़ी होती हूं। कहीं और खड़े होने पर आती-जाती कारें सामने आकर धीमी रफ़्तार में रुकने का उपक्रम करती हैं। बस स्टॉप पर कम से कम मैं आराम से रुककर इंतज़ार तो कर सकती हूं।"

गाड़ियों का सामने आकर धीमी गति से चलना इस बात का संकेत होता है कि महिला को यौन प्रस्ताव या घूमने-फिरने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है। इसलिए बस स्टॉप पर खड़ी होकर औरत इस बात का प्रमाण देती हैं कि वह एक 'अच्छी औरत' है जिसके सार्वजनिक स्थल पर मौजूद होने के पीछे एक जायज़ मकसद है। हमारे सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि बस स्टॉप पर भी औरतें छेड़खानी और बदसुलूकी का शिकार होती हैं, हालांकि यह अन्य जगहों से अधिक सुरक्षित माने जाते हैं।

हमारे सामने ऐसे कई मामले हैं जो दर्शाते हैं कि किसी "गलत समय" या "स्थल" पर औरत की मौजूदगी किस प्रकार हिंसा का कारण बन जाती है- तड़के सुबह खेत में जा रही एक युवा लड़की के साथ बलात्कार इसलिए किया गया क्योंकि अभी अंधेरा था और दिन पूरी तरह चढ़ा नहीं था। एक दूसरी महिला का बलात्कार रात के समय गाड़ी निकालते समय पार्किंग में किया गया था।

इन घटनाओं पर सार्वजनिक प्रतिक्रिया बौखलाहट के साथ-साथ सुरक्षा का ज़िम्मा वापस महिला पर डाल देने की होती है। उदाहरण के लिए सन् 2004 में दिल्ली पुलिस ने पाबंदियों और मनाहियों की फेहरिस्त जारी की थी जिसमें अंधेरा होने पर अकेले बाहर निकलने, अजनबियों से बातचीत करने, सुनसान इलाकों में न घूमने इत्यादि जैसी हिदायतें शामिल थीं। हाल ही में दिल्ली पुलिस ने पूर्वोत्तर क्षेत्र की महिलाओं को सुझाव दिये कि वे किस प्रकार यौन हिंसा से बच सकती हैं। इन सुझावों में कपड़े व व्यवहार संबंधी हिदायतें भी शामिल हैं।

शहरों को महिलाओं के लिये सुरक्षित बनाओ

औरतों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी सुरक्षा की ज़िम्मेवारी स्वयं उठाएं। चूंकि हिंसा का स्वभाव यौनिक होता है लिहाज़ा इज़्ज़त और पवित्रता का मुद्दा सर्वोपरि बन जाता है। जायज़ कारण पैदा करने का दायित्व औरतों को अपनी आवाजाही नियंत्रित करने तथा सार्वजनिक जगहों पर किसी विशेष प्रयोजन से मौजूद होने या कम से कम किसी खास वजह का उपक्रम करने को बाध्य कर देता है। यानी औरतों के पास, बिना किसी उद्देश्य से, किसी सार्वजनिक जगह पर मौजूद होने या "ऐसे ही" घूमने-फिरने की आज़ादी नहीं होती। इसलिए हम अक्सर पुरुषों को पार्क में टहलते-बतियाते पाते हैं जबकि औरतें पार्क का उपयोग किसी खास मकसद के साथ ही करती हैं जैसे बच्चों को खिलाने, व्यायाम करने, बैठकर बातें करने के लिए। यह उपयोग प्रायः घर के नज़दीक स्थित पार्क या रिहाइशी कॉलोनी के पार्कों तक ही सीमित होता है। इंडिया गेट जैसी खास जगहों पर औरतें परिवार के साथ या समूहों में ही आती हैं। रात के समय अक्सर औरतें पार्कों में सुरक्षित महसूस नहीं करती हैं।

इन धारणाओं में यह पूर्वाग्रह भी निहित हैं कि औरतों की सही जगह घर के अंदर होती है और वे बाहर तभी जाती हैं जब वे ऐसा करना चाहती हैं। यह सोच उन सभी कामकाजी व मध्यमवर्गीय महिलाओं की सच्चाई को नज़रअंदाज़ करती है जिन्हें दिन भर सड़कों, बसों, पार्कों, स्कूलों, अस्पतालों और काम के स्थानों जैसी सार्वजनिक जगहों पर आना-जाना पड़ता है।

सुरक्षा का अभाव गरीब और कामकाजी महिलाओं पर अधिक प्रभाव डालता है क्योंकि इनको अक्सर स्कूल व काम पर जाने के लिए सुरक्षित यातायात के साधनों के अभाव में अपनी उत्तरजीविका व शैक्षिक अधिकार त्यागने पड़ते हैं। नई पुनर्वास बस्तियों में युवा लड़कियों के माता-पिता उन्हें स्कूल से निकाल लेते हैं क्योंकि बस से आते-जाते समय उन्हें यौन हिंसा का डर रहता है। डर के साथ-साथ इसका इन लड़कियों के जीवन पर भौतिक प्रभाव भी पड़ता है। दिल्ली विश्वविद्यालय की छात्राओं ने बताया कि वे अंधेरा होने के बाद सड़क पर निकलने से कतराती हैं क्योंकि सड़क पर

रोशनी काफी कम होती है और स्कूटर-कारों में सवार पुरुष उन्हें परेशान करते हैं। अगर पुस्तकालय शाम को देर तक खुले भी हों तो भी छात्राएं वहां कम ही दिखाई देती हैं। इन सभी का परोक्ष प्रभाव औरतों की शिक्षा, रोज़गार और शहरी जीवन में सम्पूर्ण भागीदारी पर पड़ता है।

इस विश्लेषण से यह साबित होता है कि यद्यपि आज के दौर में मीडिया और प्रचलित संस्कृति के प्रयासों के चलते यौनिकता को इच्छा के पैमाने पर पुनः आंका जा रहा है परन्तु "सम्मानीय यौनिकता के मापदण्ड" आज भी सतत् रूप से दोहराये जाते हैं। लिहाज़ा रात की पार्टी में शामिल औरतों को लेकर आम धारणा यह है कि वे आसानी से यौन संबंध बनाने के लिए तैयार हो जाती हैं और इसलिए ये औरतें हिंसा व बलात्कार के खतरे का अधिक सामना करती हैं।

यद्यपि शहर तक औरतों की पहुंच में पितृसत्ता की भूमिका महत्वपूर्ण है पर हमारे शोध से यह भी पता चला है कि शहर की योजनाएं व डिज़ाइन औरतों के सुरक्षा अनुभवों पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, किसी जगह का विविध कामों के लिए उपयोग उसे सुरक्षित बनाने में मददगार साबित होता है। योजनाशास्त्री व समाजशास्त्री इस बात का दावा करते हैं कि ऐसी जगहों का इस्तेमाल दिन भर होता है व यहां अलग-अलग तरह के लोगों की मौजूदगी होती है।

अपनी जांच के दौरान हमने यह भी पाया कि उन जगहों पर जहां लोग घूमते-फिरते नज़र आते हैं, सुरक्षा का आभास किसी सुनसान जगह से अधिक होता है। मध्यमवर्गीय रिहाइशी कालोनियों में औरतें उन पार्कों व कालोनी के अंदर की सड़कों का अधिकतर इस्तेमाल करती हैं जहां पर रोशनी ज़्यादा होती है। इसके अतिरिक्त दिन ढलने के बाद औरतों को सब्ज़ी व रोज़ाना की ज़रूरत का समान बेचने वाले खोखे, प्रेस की दुकानों आदि की मौजूदगी सुरक्षा का एहसास कराती हैं। उन्हें आसपास की दुकानों, बाज़ार, हाटों में भी रात के समय जाना सुरक्षित लगता है क्योंकि वहां बड़ी संख्या में लोग मौजूद होते हैं। पैदल पारपथों का उपयोग औरतें तभी करती हैं जब वहां सामान बेचने वाली दुकानें, खोखे और अच्छी रोशनी होती है।

किसी भी जगह को सुरक्षित बनाने में उपयुक्त रोशनी एक महत्वपूर्ण कारण होता है इसलिए अच्छी रोशनी वाले बाग-बगीचों में औरतें अधिक जाती हैं। ठीक इसी तरह रिहाइशी इलाकों में स्ट्रीट लाईट व तेज़ रोशनी औरतों की सुरक्षा का अहम कारण है। शहर की जगहों में दिन और रात में समय बड़ा फ़र्क़ होता है। अपनी शोध के दौरान हमने जांच दिन ढलने से पहले शुरू की और रात होने तक जारी रखी जिससे जगहों के बीच फ़र्क़ को समझा जा सके। हमने पाया कि शहर की अलग-अलग जगहों पर रोशनी की व्यवस्था के बीच अंतर है। लिहाज़ा बस स्टॉप से घर वापस आना रात के समय असुरक्षित हो जाता है। मध्यमवर्गीय व उच्चवर्गीय इलाकों में रोशनी की व्यवस्था बेहतर पाई गई। उदाहरण के लिए मायापुरी औद्योगिक क्षेत्र की फैक्ट्रियों के बाहर बिल्कुल अंधेरा था और वहां काम करने वाली औरतें घर जाने के लिए निकलते समय एक दूसरे का इंतज़ार करती थीं। वहां बस स्टॉप पर कोई रोशनी नहीं थी। काम चलाने के लिए सड़क की लाईट या ठेलों की गैस बत्ती मौजूद थी।

दिल्ली के शहरीकरण के लिए गरीब-कामकाजी वर्ग को शहर से योजनाबद्ध तरीकों से हटाया जा रहा है जैसे फैक्ट्रियों को बंद करके, बस्तियां तोड़कर, शहर के बाहरी क्षेत्रों में पुनर्वास करके। दिल्ली शहर के गरीब झुग्गी-झोपड़ी, बस्तियों, अवैध इलाकों में रहते हैं जहां ढांचागत भौतिक सुविधाएं नगण्य होती हैं। यहां पर असुरक्षा के कारणों में खराब रोशनी व्यवस्था, सार्वजनिक शौचालय के बदतर हालात, यातायात के खराब साधन आदि भी शामिल हैं।

खलता है

बाज़ार, सिनेमाघरों, पार्क व व्यवसायिक केंद्रों में महिलाओं के लिए सार्वजनिक शौचालयों का अभाव इन इलाकों तक औरतों की पहुंच को सीमित कर देता है। दिल्ली में महिलाओं के सार्वजनिक शौचालयों की संख्या बहुत कम है। पुनर्वास क्षेत्रों में रहने वाली औरतों के पास अपने निजी शौचालय नहीं हैं और उन्हें पैसे देकर सार्वजनिक शौचालय या खुले मैदानों का उपयोग करना पड़ता है। औरतें आर्थिक व देखभाल संबंधी कारणों से खुले खेतों में जाना पसंद करती हैं। इन इलाकों में रहने वाली औरतों ने खेतों में पुरुषों द्वारा छेड़खानी, उत्पीड़न, घूरने, यौन अंगों के प्रदर्शन के अनेक किस्से हमें सुनाए हैं।

चुभता है

यह स्पष्ट है कि रोशनी, पारपथ, सड़कों की हालत, पार्क, पेड़ों आदि की औरतों के लिए किसी जगह को सुरक्षित या असुरक्षित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसी तरह किसी भी जगह के उपयोग का तरीका उसकी सुरक्षा में अहमियत रखता है जैसे शराब की दुकानें जहां बड़ी संख्या में पुरुष जमा रहते हैं औरतों के लिए असुरक्षित और गैर आरामदायक होती हैं। दूसरी ओर जानी पहचानी दुकानें और दुकानदार उस जगह के प्रति औरतों के मन में सुरक्षा की भावना पैदा कर देते हैं। हमारा कहने का यह मतलब नहीं है कि सिर्फ़ यही कारण सुरक्षा की गारंटी हैं बल्कि यह कि ये सुरक्षा के महत्वपूर्ण कारक हैं जिन पर गौर किया जाना चाहिए।

कौन से कारण किसी जगह को सुरक्षित या असुरक्षित बनाते हैं जैसे सवालों पर चर्चाएं अक्सर मध्यम व उच्चवर्गीय महिलाओं के इर्द-गिर्द केंद्रित हो जाती हैं क्योंकि ये वर्ग भौगोलिक शहरों और अर्थव्यवस्था में भागीदार हैं। इसलिए बी.पी.ओ. में कार्यरत महिला के ऊपर हिंसा होने पर जनता में तीव्र प्रतिक्रियाएं होती हैं पर उन औरतों के प्रति लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं होती जो देर रात काम से लौटती हैं और जिनके मालिक उन्हें कोई सुरक्षा सुविधा मुहैय्या नहीं कराते। इनमें नर्स, घरेलू कामगार तथा अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत कामकाजी महिलाएं शामिल हैं। ठीक इसी तरह मध्यमवर्गीय रिहाइशी इलाकों की सुरक्षा भी पूर्णतः वर्ग आधारित है। इसलिए काफी मध्यमवर्गीय क्षेत्रों के सुरक्षा नियमों के तहत 'निम्न वर्ग पुरुष' समान बेचने वालों को भीतर आने की मनाही है, पर यही लोग इन इलाकों में काम करने वाली घरेलू कामगार महिलाओं की सुरक्षा के प्रति बिल्कुल बेज़ार होते हैं।

अंत में हम यह कहना चाहेंगे कि सुरक्षा का विमर्श अधिकारों के व्यापक ढांचे के बीच स्थापित किया जाना चाहिए। सुरक्षा का अभाव औरतों को शहरी जीवन में खुलकर भाग लेने से वंचित करता है इसलिए सुरक्षा मुहय्या कराना व इस समस्या का समाधान भी अधिकारों के दायरे के भीतर किया जाना चाहिए। औरतों को अपनी असुरक्षा का निदान तलाशने के लिए नहीं कहा जा सकता। पैपर-स्प्रे या आत्म सुरक्षा कोर्स जैसे समाधान सुरक्षा को अधिकार के रूप में नहीं देखते। इस समस्या का समाधान राज्य व समुदाय से ही निकलना चाहिए। इसके लिए एक विचार-विमर्श प्रक्रिया जिसमें जनसंख्या के सभी गरीब, कमज़ोर तबके शामिल हों, के विचारों की सुनवाई तथा उनके पक्षों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। तभी औरतों का शहरी नागरिक होने का सम्पूर्ण अधिकार मिल सकता है।

कल्पना विश्वनाथ व सुरभि टंडन मेहरोत्रा

यह लेख सेमिनार अंक 583 मार्च 2008 में पूर्व प्रकाशित किया जा चुका है।
मूल लेख अंग्रेज़ी में 'सेफ़ इन द सिटी' शीर्षक से है।

फ़ोटो: संदीप सक्सेना

दोहरा बोझ: राजधानी का कठोर जीवन

कल्पना शर्मा

दिल्ली पुलिस ने शहरों में महिलाओं की सुरक्षा की पुरानी गाथा को एक नया मोड़ दे दिया है। महिलाओं की सुरक्षा विशेषतः पूर्वोत्तर भारत की महिलाओं की सुरक्षा का इरादा रखते हुए उन्होंने ने एक बुकलेट जारी की है। शीर्षक *"पूर्वोत्तर भारत से दिल्ली आए विद्यार्थियों/पर्यटकों के लिए सुरक्षा"* वाली इस बुकलेट में कुछ ऐसे नुस्खे दर्ज किये गये हैं जिनकी मदद से पूर्वोत्तर भारत से आने वाली महिलाएं दिल्ली की सड़कों पर सुरक्षित महसूस कर पाएंगी।

कुछ लोगों के लिए यह दिल्ली पुलिस द्वारा उठाया गया अनोखा कदम हो सकता है, पर दिल्ली वह शहर है जहां पूर्वोत्तर भारत की कई छात्राओं के साथ बलात्कार किया गया है। यह बुकलेट परोक्ष रूप से यह सुझाती है कि इस यौन हिंसा का कारण छात्राओं की पोशाक व पहनावा है। यानी एक बार फिर सुरक्षित रहने का दारोमदार औरतों के ऊपर आ पड़ा है।

यह बुकलेट जिनकी प्रस्तावना पूर्वोत्तर भारत के आईपीएस अफ़सर व दिल्ली पुलिस के डिप्टी कमीश्नर रॉबिन हिबु ने लिखी है अपनी भाषा और विषय वस्तु में अनूठी है। वेशभूषा के विषय को लेकर यह बुकलेट सुझाती है, "वैन इन रूमस दू एज़ रोमन डज़" (when in rooms do as Roman does) इसका क्या अर्थ है यह समझना कठिन है!!

सुरक्षा टिप्स के खण्ड में लिखा गया है: *पारदर्शी कपड़े न पहनें, अगर 'कम कपड़े' पहने हों तो सुनसान सड़क/बाई लेन का प्रयोग न करें, स्थानीय आबादी की भावनाओं का सम्मान करते हुए अपने कपड़ों का चयन करें।* इस बुकलेट में इस सच के लिए कोई जगह नहीं है कि स्थानीय जनसंख्या के पुरुषों द्वारा छेड़े जाने, यौन हिंसा, हमला या शारीरिक बदसलूकी सहने के लिए आपका औरत होनी ही काफी होता है और आपकी पोशाक का इस पर कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता। यानी यह बुकलेट बिल्कुल अनुपयुक्त और आपत्तिजनक है।

मैंने इस बुकलेट के कुछ अंश पढ़े हैं। इस बुकलेट को निकालने के पीछे छिपी अच्छी मंशा के बावजूद यह स्पष्ट होता है कि पूर्वोत्तर भारत की महिलाओं की संवेदनाओं के लिए यह अनुपयुक्त और आपत्तिजनक दस्तावेज़ है।

न सिर्फ़ इसमें दी गई सलाह बेकार और बेबुनियाद है परन्तु इसमें पूर्वोत्तर भारत से आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह बताया गया है कि उन्हें दिल्ली आने पर किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए। अगर बुकलेट का मकसद यह नहीं है तो आप बताएं कि हम इस हिदायत को कैसे जायज़ ठहराएं- *अखुनी, बैम्बू शूट व अन्य बदबूदार खाने की चीज़ों को पास-पड़ोस में हलचल पैदा किए बगैर पकाना चाहिए। बदबूदार व्यंजन* और *पड़ोस में हलचल* अगर ये वाक्य सांस्कृतिक नज़रिए से आपत्तिजनक न भी माने जाएं तो भी ये हास्यपद तो हैं ही।

इसमें कोई हैरानी की बात नहीं है कि पूर्वोत्तर क्षेत्र से आए काफी विद्यार्थियों को दिल्ली पुलिस का यह असंवेदनशील व बेबुनियाद प्रयास निरुत्तर कर गया है। संवेदनशीलता प्रशिक्षण की पुलिस को अधिक ज़रूरत है, हमला सहने वाली महिलाओं को नहीं। मणिपुर की एक महिला पत्रकार ने ई-मेल गोष्ठी में हमें बताया कि रात को साढ़े नौ बजे उसे एक भीड़ वाले इलाके में ऑटो में घसीटकर डाला गया। उस समय सड़क पर काफी लोग मौजूद थे और रोशनी भी काफी थी। बाद में जब उसने पुलिस में शिकायत की तो उसे सुनने को मिला- "यह पूर्वोत्तर क्षेत्र से है। ऑटो में खुद ही जाकर बैठ गई होगी।" और यह तब कहा गया जबकि सभी लोग जानते थे कि वह एक पत्रकार है।

यह बुकलेट एक और सवाल उठाती है- वह है हमारे शहरों को एक 'जेंडर लेंस' अर्थात लैंगिक नज़रिए से जांचने के महत्व का। अगर शहर औरतों के लिए सुरक्षित होगा तो बाकी सभी लोग भी वहां सुरक्षित महसूस करेंगे। मुंबई जैसे शहरों में किए गए "जेंडर ऑडिट" अथवा लैंगिक जांच ने कुछ ऐसे अहम सुझाव पेश किए हैं जिनका कार्यान्वयन हमारे शहरों को अधिक रहने योग्य बना सकता है।

हम मानते हैं कि सभी सार्वजनिक परिवहन सुरक्षित नहीं होते और सांस्कृतिक कारक इन्हें प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए दिल्ली में सार्वजनिक परिवहन सेवा मौजूद है परन्तु इन्हें उपयोग करने के लिए महिलाओं को कवच धारण करना पड़ता है। इन बसों में आरक्षित महिला सीटों से भी कोई राहत नहीं मिलती और उन तक पहुंचना अपने आप में एक जद्दोजेहद होता है। और अगर आपको

ऐसे स्थल जो अनेक कार्यों के लिए उपयोग किये जाते हैं और जहां रोशनी की अच्छी व्यवस्था होती है वहां महिलाएं ज़्यादा सुरक्षित महसूस करती हैं क्योंकि वहां हर वक्त लोगों की मौजूदगी रहती है। इसी प्रकार वे शहर महिलाओं को अधिक सुरक्षित प्रतीत होते हैं जहां परिवहन साधन सुचारू रूप से मुहय्या होते हैं। दरअसल ये शहर पूरी जनता के लिए ही सुरक्षित होते हैं।

खिड़की के पास वाली सीट मिल जाती है तो आप कुछ समय के लिए 'सुरक्षित' महसूस कर सकती हैं। परन्तु अगर आपको गलियारे के साथ लगी "लेडीज़" सीट मिलती है तो आप पुरुष सहयात्रियों के अनचाहे टकराव, स्पर्श, चिपकने, सहलाने से बच नहीं सकतीं। जिस किसी ने भी दिल्ली की बसों में सफर किया है वह आपको बखूबी समझा सकता है कि अलग सीट होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। शायद पूरी महिलाओं से भरी बस हो तो काम चलेगा। पर मैंने ऐसे कई किस्से सुने हैं जहां दिन के समय 'केवल महिलाओं के लिए' बस में सवार अकेली औरत के साथ बस चालक व कडंक्टर ने यौन हिंसा की है।

यह सब कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि महिलाओं को सचेत नहीं रहना चाहिए। हम सभी जानते हैं कि सड़क पर क्या होता है। इसके लिए हमें तैयार रहना होगा। किसी मुगालते में रहने का कोई फायदा नहीं है। हम अपनी बेटियों को भी यही सिखाते हैं, पर हम अपनी बेटियों को आत्म-विश्वासी बनना भी सिखाएंगे। हम उन्हें यह पाठ पढ़ाएंगे कि वे अपना सम्मान करें। क्या हुआ अगर समाज उन्हें इंसानों को मिलने वाले सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। हम उन्हें अपने हक़ों के लिए हर हालत में संघर्ष करना सिखाएंगे।

पर पूर्वोत्तर क्षेत्र की लड़कियों के ऊपर दोहरा बोझ है - औरत होने का व दूसरे लोगों से अलग दिखने का। उनकी "रक्षा" करने के लिए पुलिस व दिल्ली प्रशासन को एक व्यापक जन-शिक्षण व संवेदनशीलता कार्यक्रम शुरू करने की ज़रूरत है जो पुलिस व आम जनता पर केंद्रित हों, न कि पूर्वोत्तर से आई लड़कियों पर।

'लेडीज़ स्पेशल' पर सवार

श्रेया भट्टाचार्य

इस वर्ष की शुरूआत में राष्ट्रमंडल खेलों की तैयारी के दौरान *महिला एवं बाल विकास मंत्रालय* ने घोषणा की कि दिल्ली की जनता को महिलाओं की सुरक्षा के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए जागृति कार्यक्रम व कार्यशालाओं का आयोजन किया जाएगा। विभाग इसकी शुरूआत दिल्ली परिवहन निगम (डीटीसी), दिल्ली पुलिस, शिक्षा विभाग व बाज़ार संगठनों से करेगा। महिलाओं की सुरक्षा के लिए एक कार्यकारी समिति का गठन भी किया गया है। स्वास्थ्य मंत्री, किरण वालिया कहती हैं, *हमारा मकसद लोगों को महिला सुरक्षा के प्रति चेतन तथा अपने शहर पर गौरवान्वित करना है।*

दिल्ली सरकार की पूरी कोशिश है कि 2010 के राष्ट्रमंडल खेलों से पहले सार्वजनिक परिवहन ढांचे की कायापलट हो सके तथा 2020 के मास्टर प्लान के अनुसार दिल्ली को 'स्टेट-ऑफ़-द आर्ट' ढांचा प्रदान करने की दिशा में भी प्रगति की जा सके।

पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि महिलाओं की सुरक्षा पर ध्यान देने के लिए सरकार को राष्ट्रमंडल खेलों जैसे कार्यक्रम की ज़रूरत पड़ती है!!

महिलाओं की आवाजाही को सार्वजनिक परिवहन में होने वाली यौन हिंसा व उत्पीड़न चुनौती प्रदान करते हैं। *दिल्ली मानव विकास रिपोर्ट 2006* के अनुसार 90% महिलाएं मानती हैं कि सार्वजनिक परिवहन असुरक्षित है। अंग्रीजा, दिल्ली विश्वविद्यालय में कानून की शिक्षा प्राप्त करने वाली तेईस वर्षीय लड़की है और उसके अनुसार, *शायद ही कोई ऐसा दिन जाता हो जब बस में सफर करते समय हमें किसी न किसी हिंसा का सामना न करना पड़ता हो!*

अधिकांश जुर्म की रिपोर्ट ये कहानी दोहराती हैं। 2004 में दिल्ली पुलिस के सर्वेक्षण के अनुसार लगभग 45% यौन हिंसा की घटनाएं बसों में तथा 25% सड़क के किनारे घटी थीं। 40% महिलाओं ने कहा कि वे अंधेरा होने पर असुरक्षित महसूस करती हैं, 31% ने दोपहर में भी असुरक्षित महसूस करने की बात की; ये आंकड़े 2005 के राष्ट्रीय अखबार में छपे थे।

दिल्ली की 80% महिलाएं कहती हैं कि वे सार्वजनिक परिवहन के साधनों पर यौन हिंसा का शिकार होती हैं। पितृसत्तात्मक प्रशासन का इस पर जवाब है सार्वजनिक जगहों का लैंगिक विभाजन यानी लेडीज़ स्पेशल बसों का प्रावधान जिनमें पर्दे लगे हों ताकि 'महिलाओं को पुरुषों की नज़र से सुरक्षा' प्रदान की जा सके।

दिल्ली के महिला समूह इस बढ़ती समस्या से बहुत चितिंत हैं। 2007 से *जागोरी* महिला समूह अपने *सुरक्षित दिल्ली अभियान* के तहत सार्वजनिक स्थलों की सुरक्षा के मुद्दे पर कार्यरत है। *जागोरी* सर्वेक्षण के अनुसार पांच सौ महिलाओं में 80% ने बसों व अन्य परिवहन साधनों व 62% ने सड़कों पर यौन उत्पीड़न की गवाही दी।

सार्वजनिक परिवहन में हिंसा अलग-अलग तरीकों से की जाती है। 2007 में लेखिका द्वारा दिल्ली व मुम्बई में किये गये अध्ययन से पता चला कि 90% महिलाओं ने सार्वजनिक यातायात के दौरान भद्दे इशारों/घूरे जाने, 80% ने अश्लीलता से छुए जाने जैसी अनचाही शारीरिक हिंसा झेली है। 54% ने यौन छेड़छाड़, जुमले, मज़ाक सहने, तथा 52% ने पीछा किये जाने की बात की। इन हिंसाओं का स्वरूप यौनिक था- औरतों की छाती को घूरना, गंदे इशारे, अश्लील जुमलों के अलावा पुरुषों का चिपकना, यौन अंगों को रगड़ना, टटोलना भी इसमें शामिल था।

इस अध्ययन के दौरान 82% महिलाओं ने बताया कि उन्हें रात के समय सार्वजनिक परिवहन में डर लगता है जबकि केवल 22% पुरुषों ने ऐसा कहा। इस बात की पुष्टि अक्तूबर 2008 में *ऐसोचैम शोध* ने भी की जिसके अनुसार हर दूसरी कामकाजी महिला असुरक्षित महसूस करती है, विशेषकर बीपीओ/आईटी/मेज़बानी सेवा, नागरिक विमानन, नर्सिंग होम व कपड़ा उद्योगों जैसे आर्थिक गहमागहमी वाले स्थलों पर भी औरतें असुरक्षित महसूस करती हैं।

समस्या और भी गंभीर दिखाई पड़ती है जब हम हाल में ही सौम्या विश्वनाथन व जिगिषा घोष की हत्या के बाद जारी मुख्यमंत्री के बयान को सुनते हैं जिसमें उन्होंने कहा- *औरतों को ज़्यादा जोखिम नहीं उठाना चाहिए और देर रात सफर करने से बचना चाहिए।* इसके अतिरिक्त बलात्कार, मुंह पर तेज़ाब फेंकने जैसी वारदातें भी सामने हैं। अखबार व मीडिया में बलात्कार, यौन हिंसा व उत्पीड़न की खबरें लगातार छपती रहती हैं जिनमें अधिकतम बार औरतों को दोषी ठहराया जाता है और खबर को सनसनीख़ेज तरीकों से पेश किया जाता है जिनसे डर के माहौल मे बढ़ोत्तरी होती है।

अक्तूबर 2007 को भाईदूज के दिन दिल्ली मुख्यमंत्री, शीला दीक्षित ने घोषणा की, कि भाइयों से मिलने जा रही लड़कियों व औरतों को उस दिन बस का किराया नहीं देना होगा। राज्य ने ऐसे करके पिता व भाई की सुरक्षात्मक भूमिका अपनाई जिसका संदेश था कि औरतें हमेशा कमज़ोर रहेंगी। राज्य औरतों को नियमित रूप से यह हिदायत भी देता रहता है कि उन्हें हिंसा से बचाव के लिए तैयार रहना चाहिए जिससे सुरक्षा व बचाव का ज़िम्मा औरतों पर बोझ बना रहता है।

राज्य व सामाजिक ढांचों का घटनाओं के प्रति असंवेदनशील रवैया- जिसमें औरतों को हिंसा उकसाने का दोषी ठहराया जाता है, के कारण औरत उत्पीड़न सहकर खामोश रहती हैं। भीड़ वाली बस में सवार लगभग सभी औरतों के साथ हिंसा होती है। इस भीड़ वाले हालात में यह बताना मुश्किल होता है कि उनके साथ किसने छेड़छाड़ व बदसलूकी की थी।

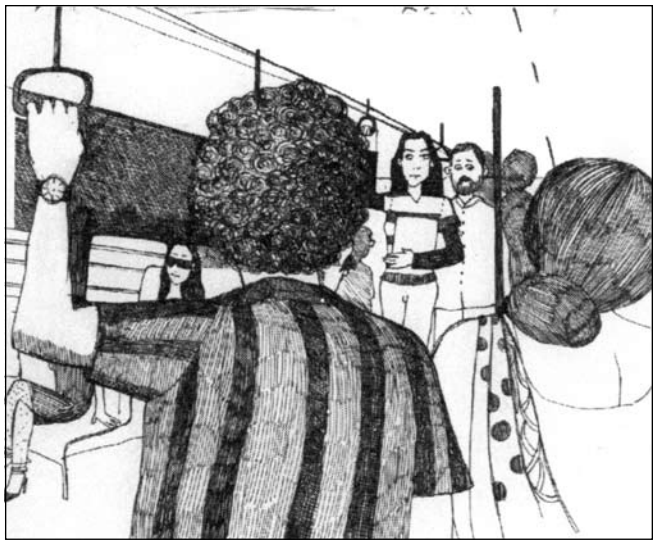

चित्र: प्रिया कुरियन

चुनौती यह है कि हिंसा व ज़बरदस्ती के इन रूपों को यौन हिंसा की तरह परिभाषित किया जाए न कि सिर्फ़ छेड़छाड़ कहकर मामूली करार दे दिया जाए। इसके साथ-साथ महिला हिंसा की पारंपरिक परिभाषा को विस्तृत बनाकर इसमें शारीरिक व यौनिक आक्रामकता के अलावा, मानसिक व भावनात्मक हिंसा के सहज रूपों को भी जोड़ा जाना चाहिए।

महिला कार्यकर्त्ताओं का कहना है- हालांकि औरतों के लिए विशेष लेडीज़ स्पेशल बसें समस्या का हल नहीं हो सकता, परन्तु ऐसे हालात में जहां औरतों को बसों में हिंसा व उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, ये प्रभावी रणनीति हो सकती है। पर हमें बहु-आयामी रणनीतियां भी ईजाद करनी होंगी क्योंकि इस समस्या के अनेक पहलू हैं। हमें राज्य तथा उसके संस्थानों व सार्वजनिक स्थलों को सबके लिए सुरक्षित और सुगम बनाना होगा।

अपने अध्ययन के दौरान लेखिका ने पाया कि किसी भी महिला ने कोई औपचारिक शिकायत दर्ज नहीं की थी। यानी महिलाओं के वास्तविक अनुभवों तथा दर्ज किए गये जुर्मों के बीच काफी फ़र्क़ था। जुर्म के आंकड़े केवल उन घटनाओं का प्रतिबिम्ब हैं जिनकी रिपोर्ट दर्ज की जाती है। लिहाज़ा सार्वजनिक परिवहन पर सफर करते समय होने वाली हिंसा के अनुभव कभी भी जुर्म के आंकड़ों के बीच जगह नहीं पाते जबकि इनकी गंभीरता और प्रचलन बेहिसाब है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि जगहों का 'सिर्फ़ महिलाओं के लिए' निर्धारण जैसे कदम पहले से ही मौजूद जगहों व स्थलों के लैंगिकरण को और अधिक स्थाई बनाते हैं। इन प्रयासों का समानता और समान अधिकारों के संदर्भ में स्पष्ट अर्थ होता है- औरतों का समान अवसर पाने से वंचन तथा स्त्री बनाम पुरुष विभाजनों की अधिक मज़बूती। हम ये कार्यान्वयन लेडीज़ स्पेशल बसों के संदर्भ में दिल्ली शहर में देखते हैं जहां सरकार ने पर्दे लगी बसें शुरू की हैं जिसके द्वारा राज्य का स्पष्ट संदेश है- "औरतों को पुरुषों की नज़र से सुरक्षित रखा जाना चाहिए।"

2005 में दिल्ली सरकार ने एक सार-संग्रह जारी किया था, *दिल्ली में महिलाओं को सुरक्षित बनाना: यौन उत्पीड़न से मुकाबला व आत्म-विश्वास बढ़ाना।* इस सार संग्रह में महिलाओं के ख़िलाफ़ बढ़ते अपराधों को चुनौती देने वाली सरकारी अगुवाइयों की बात की गई है। सरकार ने यहां इस बात को स्वीकारा है कि दिल्ली औरतों के लिए सुरक्षित शहर नहीं है और यहां काफी सुधार लाने की ज़रूरत है।

इस सार-संग्रह के परिवहन विभाग खण्ड में महिलाओं के लिए सेवाओं की बात की गई है। इसमें दर्ज है कि डीटीसी बसों में आठ सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित हैं और अलग-अलग रूट पर महिला होम गार्ड नियुक्त की गई हैं। तेईस लेडीज़ स्पेशल बसें शुरू करने का भी प्रावधान है। किसी घटना की रिपोर्ट होने पर बस को नज़दीक के पुलिस थाने या पुलिस वैन तक ले जाना आवश्यक होगा। इस तरह की घटनाओं के दर्ज कराने का दायित्व बस स्टाफ़ का होगा। बसों के अंदर व बाहरी हिस्सों पर महिला हैल्पलाईन नम्बर लिखे जाएंगे। होली व अन्य त्योहारों के मौकों पर बसों की विशेष जांच-पड़ताल की जाएगी।

सार-संग्रह में यह भी उल्लेख किया गया है कि ऑटो व टैक्सी चालकों का महिला सुरक्षा के मुद्दों पर प्रशिक्षण किया जायेगा। डायरेक्टरेट जनरल होमगार्ड विभाग के तहत विचाराधीन एक प्रस्ताव की भी इसमें बात की गई है जिसके अनुसार दस हज़ार होमगार्डों की नियुक्ति की जाएगी जो डीटीसी बसों में औरतों के साथ होने वाली छेड़छाड़ व यौन हिंसा से सुरक्षा प्रदान करेंगे।

ये प्रावधान अभी लागू नहीं किये गये हैं। बसों में महिला हैल्पलाईन नम्बर लिखे गये हैं परन्तु वे काम नहीं करते हैं। महिलाओं की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए दिल्ली की एक गैर-सरकारी संगठन ने महिला टैक्सी चालकों को प्रशिक्षण देना शुरू किया है। पर इन सेवाओं का फायदा एक विशेष वर्ग की औरतें ही उठा पाएंगी जो आर्थिक रूप से अधिक सक्षम हैं।

जागोरी का *सुरक्षित दिल्ली अभियान* आम नागरिकों को परिवर्तन के लिए एकजुट करने तथा औरतों के लिए सार्वजनिक स्थलों व परिवहन साधनों को सुरक्षित बनाने के इरादे से शुरू किया गया था। इस अभियान के तहत, डीटीसी के लिए प्रशिक्षण सत्र एक डीटीसी बस के अंदर चलाये गये। इस प्रक्रिया का मकसद बस चालकों व कंडक्टरों को महिलाओं के अनुभवों को महसूस तथा बस के अंदर के माहौल से परिचित करवाना था। इसी अभियान में ऑटो चालकों को भी जोड़ा गया है और विज्ञापन अभियान चलाये गये हैं।

परन्तु ये अभियान एक सीमा तक ही सफल रहे हैं। आज हमें ज़रूरत है शहरी परिवहन व विकास नीति बनाने में औरतों को शामिल करने की। परिवहन योजना, बस के रूट, संख्या, निरंतर उपलब्धता बस-स्टॉप व बसों के डिज़ाइन बनाने में भी लैंगिक संवेदनशीलता का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए। वास्तव में जन-भागीदारी विशेषतः महिलाओं की खास भागीदारी प्रोत्साहित करने के लिए प्रजातंत्रीय प्रक्रियाओं को विकसित करने की विशेष ज़रूरत है।

ताई

❶

❷

❸

❹

परिकल्पनाः आलेख व प्रस्तुतिः सहजो सिंह • चित्रकलाः अनुपमा चैटर्जी हारा
लेआउटः शुभा बरारा • सहयोगः अनन्त मिश्रा

जागोरी द्वारा सुरक्षित दिल्ली अभियान के लिए प्रयुक्त पैनल।

शहर से निकाले
पुनर्वास क्षेत्र में बसे लोगों की सुरक्षा

सुरभि टंडन मेहरोत्रा

जागोरी ने सार्वजनिक जगहों की सुरक्षा व उपयोग से जुड़े अपने काम के दौरान दिल्ली में कई सेफ़्टी ऑडिट यानी सुरक्षा जांच की हैं। इस जांच में औरतें किसी इलाके में घूमकर वहां मौजूद सुरक्षा व असुरक्षा के मानकों की समीक्षा करती हैं। दिल्ली में मध्यमवर्गीय रिहाइशी क्षेत्र, विश्वविद्यालय परिसर, व्यवसायिक इलाके व पुनर्वास क्षेत्र इस जांच में शामिल किये गये हैं। जांच से पता चला कि औरतों के मन में वास्तविक हिंसा के साथ-साथ हिंसा का डर भी होता है जिसके चलते वे सार्वजनिक स्थलों पर हक़ और वैधता से नहीं जातीं। इस डर का अनुभव रहने की जगह, कार्यस्थल तथा आवाजाही को प्रभावित करता है और हर वर्ग की महिला के लिए ये एहसास अलग-अलग होते हैं।

इस लेख में विस्थापन के बाद नये इलाकों में पुनर्वासित परिवारों की महिलाओं व लड़कियों द्वारा सार्वजनिक जगहों के इस्तेमाल की समीक्षा की गई है। लेख में इन महिलाओं द्वारा अपनी नई ज़िंदगी बसाने, जिसमें नए घर, सामाजिक संबंध, रोज़गार व शिक्षा के मुद्दे तथा रोज़मर्रा झेली जाने वाली हिंसा भी शामिल है, तथा सार्वजनिक स्थलों से उनके संबंधों की समझ बनाने की कोशिश की गई है। जैसे-जैसे समुदाय इन नए इलाकों में अपनी पकड़ बनाता जाता है वैसे-वैसे असुरक्षा से जुड़े कुछ मुद्दे परिवर्तित होते हैं या बदलने लगते हैं तथा कुछ पुराने व नये आयामों का लड़कियों व महिलाओं को अब भी सामना करना पड़ता है।

जागोरी मदनपुर खादर, जेजे कालोनी के फेज़-3 में 2003 के अंत से काम कर रही है। सन् 2000 से लेकर 2009 तक यहां पुनर्वास का काम जारी था। नेहरू प्लेस, गोविंदपुरी, कैलाश कालोनी, राजनगर, अलकनंदा, ईस्ट ऑफ़ कैलाश से अनेक समुदाय यहां आये हैं। यहां काफी औरतें घरेलू कामगार, कबाड़ी, चाय, खाने की दुकान, सिगरेट-बीड़ी के खोखे या पीस रेट पर काम करती हैं। युवा लड़कियां स्कूल जाती हैं। शिक्षा व रोज़गार के अलावा यहां औरतों को बाज़ार व स्वास्थ्य सुविधाएं मुहय्या हैं। आवाजाही के लिए पैदल चलना, बस, ऑटो रिक्शा उपलब्ध हैं।

मदनपुर खादर दिल्ली व उत्तर प्रदेश सीमा पर स्थित पुनर्वास क्षेत्र है जो पूर्वी दिल्ली के कालिंदी कुंज के नज़दीक है। जेजे कालोनी, खादर गांव के साथ में है तथा यमुना नहर इसके पास से गुज़रती है। यहां पहुंचने के लिए नोएडा से आने वाली सड़क के एक किनारे पर नहर है व दूसरी तरफ इण्डियन ऑयल डिपो है जिसके कारण सड़क पर भारी यातायात रहता है। मदनपुर खादर जेजे कालोनी तक खादर गांव से भी पहुंचा जा सकता है।

इस इलाके में पक्के व कच्चे दोनों घर हैं। घरों के बाहर संकरी ईंटों की सड़क पर अधिकांश परिवार घर का सामान जैसे खाट, बालटी, चूल्हा रखते हैं। हर ब्लॉक में शौचालय हैं जिन्हें पैसे देकर इस्तेमाल किया जा सकता है। ये शौचालय रात दस बजे बंद हो जाते हैं। उसके बाद सभी रहने वालों को खुले खेतों का उपयोग करना पड़ता है। फेज़-3 से आने वाली मुख्य सड़क व अंदर संकरे रास्ते पर काफी दुकानें

मदनपुर खादर में शौचालय के साथ लगा खाली मैदान

हैं। यहां पर कोई बस स्टॉप नहीं बनाए गए हैं हालांकि बसें इस इलाके में तीन जगह रुकती हैं तथा प्राईवेट आरटीवी गाड़ियां सड़क के किनारे कई स्थानों पर रुक जाती हैं। ये स्टॉप यहां के अनौपचारिक बस/गाड़ी स्टॉप कहलाते हैं। यहां पर अभी तक कोई सार्वजनिक पार्क नहीं बनाया गया है जबकि बगीचे की आबंटित भूमि निर्धारित कर दी गई है। पास का एक इलाका जिसे 'पहाड़ी' कहा जाता है का इस्तेमाल औरतें शौच व ईंधन के लिए लकड़ी इकट्ठा करने के लिए करती हैं। इस पुनर्वास क्षेत्र के चारों ओर कोई सीमा नहीं है जिसके कारण किसी भी तरफ से आना-जाना संभव है। शुरूआत में फेज़-3 के आस-पास खेत थे जो अब धीरे-धीरे कम होते जा रहे हैं। दूसरे फेज़ कुछ ही दूर पर स्थित हैं और सबसे अंतिम फेज़ एक किलोमीटर की दूरी पर है।

एक औरत जिसकी उम्र चालीस के आसपास थी ने अपना अनुभव बताया "मैं पहाड़ी पर अकेली गई थी जब यह घटना घटी। अचानक मेरे सामने एक आदमी आकर खड़ा हो गया। उसका पाजामा नीचे था। पहले तो मैं घबरा गई और मेरे हाथ-पैर सुन्न हो गये। फिर मुझे अहसास हुआ कि वह ऐसा जान-बूझकर कर रहा था। मैं भाग खड़ी हुई। तब से मैं पहाड़ी पर अकेली नहीं जाती और न ही अपनी बेटियों को जाने देती हूं।"

इस इलाके में सुरक्षा जांच के दौरान यह स्पष्ट हो गया है कि उच्च व मध्यमवर्गीय दिल्ली तथा निम्नवर्गीय इलाकों खासकर पुनर्वास व दूर-दराज़ बसाये क्षेत्रों की ढांचागत व्यवस्थाओं में भारी फ़र्क़ है। यह पुरुषों-औरतों के प्रति आपराधिक मामलों की संख्या काफी बड़ी है। यहां पर कुछ ही मुख्य मार्गों पर बत्ती है तथा सार्वजनिक शौचालय व परिवहन सुविधाएं अपर्याप्त हैं। मुख्य रिहाइशी इलाकों के साथ-साथ शौचालय, खुले खाली मैदान, बस स्टॉप व सार्वजनिक परिवहन ऐसे स्थल हैं जो असुरक्षित हैं।

शुरूआत के वर्षों में यहां रहने वाले लोग पैसे देकर शौचालय इस्तेमाल करते थे जबकि कुछ लोग पास के खुले मैदानों में जाते थे, जैसा कि उनका हमेशा से नियम था। जैसे-जैसे समय गुज़रता गया शौचालयों की हालत खराब होती गई और गंदगी व पैसे की दिक्कत के कारण उनका उपयोग करना संभव नहीं रहा। शुरूआत के समय से ही यहां की औरतों ने खेतों व मैदानों में छेड़खानी व हिंसा के किस्से बयान किये थे। औरतों ने बताया कि अकेले शौच के लिए खेतों में जाने पर उन्हें पुरुषों के घूरने, छेड़ने व यौन अंग प्रदर्शन जैसी अश्लील हरकतें अक्सर झेलनी पड़ती हैं। उन्होंने बताया कि ऐसा होने पर वे अक्सर भाग जाती हैं या फिर एक झुंड बनाकर खेतों में जाती हैं।

औरतों ने यह भी बताया कि रात दस बजे शौचालय बंद हो जाते हैं और उस समय खेतों में जाना उनके लिए असुरक्षित रहता है। फसलें ऊंची-ऊंची होती हैं और उनके बीच में पुरुष छिपकर बैठ जाते हैं।

कुछ औरतों ने यह भी कहा कि सभी पुरुष ऐसी हरकतें जान-बूझकर नहीं करते। वे भी खेतों में फारिग होने जाते हैं और ऐसे में अगर वे गलती से औरतों के सामने पड़ जाएं

तो वे फौरन वहां से चले जाते हैं, पर कुछ पुरुष ज़बरदस्ती औरतों के शौचालयों में घुस जाते हैं या दरवाज़ा खोल देते हैं। शौचालय में काम करने वाले पुरुष भी औरतों के साथ छेड़छाड़ करते हैं।

इलाके की आबादी बढ़ने के साथ-साथ शौचालय की देख-रेख व सफाई की हालत बदतर हो गई है। सुरक्षा जांच के समय वहां स्थित दसों सार्वजनिक शौचालय काम नहीं कर रहे थे। उनके दरवाज़े टूटे थे तथा गंदगी व पानी की कमी के कारण उनका उपयोग असंभव था। ऐसे में औरतों झुंड बनाकर खेतों में जाने को विवश थीं। रात के समय वे अपनी लड़कियों को किसी भी हालत में अकेले बाहर नहीं जाने देतीं। इन मैदानों का दिन के समय उपयोग नहीं किया जाता जिससे औरतें शौच रोकने को मजबूर हो जाती हैं। कई परिवारों ने अपने मकानों के कुछ हिस्सों में अस्थाई शौचालय बना लिए हैं जिनसे थोड़ा बहुत गुज़ारा हो जाता है।

यहां आकर बसने वाले परिवारों की औरतों के लिए शुरूआत में हाट-बाज़ार करना मुश्किल भी होता था। यहां सामान बेचने वाले ठेले नहीं आते थे और कोई भी सौदा लेने के लिए बाहर सड़क तक जाना पड़ता था। इन सड़कों पर पुरुषों की छेड़छाड़, छींटाकशी, घूरने, टकराने, सहलाने जैसी हरकतें आम थीं। यहां दिन व रात दोनों समय नशे में धुत्त पुरुष घूमते रहते थे। क्योंकि ये कालोनी नई व अपरिचित थी इसलिए किसी एक अनचाही घटना के बाद औरतें बाहर एक दूसरे के साथ ही जाना पसंद करती थीं।

मदनपुर खादर स्थित सुलभ शौचालय जो बंद पड़ा है

एक औरत के अपने शब्दों में- "सभी कहते हैं कि हमें कार्यस्थल पर मौजूद पुरुषों से बचकर रहना चाहिए परन्तु मुझे काम पर सुरक्षित महसूस होता है। अधिक डर तो मुझे अपने घर से आने-जाने की यात्रा में लगता है। मैं सिर्फ़ पैसे कमाने के लिए बाहर आती-जाती हूं और यह खतरा उठाती हूं। बस चले तो मैं ऐसे कभी न करूं। मैं हरदम एक डर के साये में जीती हूं।"

चूंकि सड़क पर रात के समय रोशनी का अभाव था लिहाजा बाज़ार के सारे काम औरतें दिन में निपटाती थीं।

अपने दो वर्षों के दौरान हमने पाया कि युवा लड़कियां अपने उत्पीड़कों को उस बस्ती के नाम से चिन्हित करती हैं जहां से उनका पुनर्वास किया गया था। हमसे बातचीत के दौरान वह कुछ ऐसे बोलती थीं- 'राजनगर के लड़कों ने हमारे साथ छेड़खानी की थी' या 'नेहरू प्लेस का एक लड़का अलकनंदा की लड़की का पीछा कर रहा था।' उनके अनुसार उनकी अपनी बस्ती से आने वाले लड़के उनके साथ छेड़छाड़ नहीं करते परन्तु दूसरी बस्ती के लड़के उन्हें परेशान करते हैं। इन अजनबियों को पहचानने के लिए वे दूसरी बुजुर्ग महिलाओं, अपने भाइयों या बेटों की मदद लेती थीं क्योंकि ये लोग इन लड़कों को पहचान सकते थे। पुनर्वास के पहले वर्ष 'बाहरी' अजनबियों की छेड़छाड़ के डर से युवा लड़कियों की माताएं उन्हें कालोनी की बाहरी सड़कों पर अकेले नहीं जाने देती थीं।

जैसे-जैसे इलाके की आबादी बढ़ी, खाली प्लॉट भरने लगे व सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था हुई, वैसे-वैसे यहां रहने वाले के बीच एक समुदाय का एहसास भी पनपने लगा। अब छेड़खानी के मामले पिछले इलाकों के नाम से नहीं बल्कि छेड़छाड़ की घटनाओं के रूप में पहचाने जाने लगे।

इस क्षेत्र की अंदरूनी सड़कें सुरक्षा के लिहाज़ से बेहतर हैं क्योंकि वहां दिन भर औरतें मौजूद होती हैं जो इस जगह को अपने रोज़मर्रा के कामों के लिए उपयोग करती हैं। इन जगहों का इस्तेमाल रात का भोजन निपटने तक चलता रहता है।

टूटा हुआ सार्वजनिक शौचालय

सभी पुनर्वास इलाकों में बगीचों, बारात घरों व दवाखानों की जगह निर्धारित की गई है। इन जगहों को कपड़े सुखाने, फालतू सामान फेंकने व बच्चों के खेलने के लिए उपयोग में लाया जाता है। परन्तु इन्हीं जगहों पर लड़के झुंड बनाकर खड़े भी रहते हैं जिससे शाम ढलने पर लड़कियां यहां आने से कतराती हैं। लड़कियां अक्सर अपने घरों के बाहर ही खेलती हैं। खेलकूद के लिए निर्धारित पार्क में पुरुष जुआ खेलते दिखाई देते हैं और वे इसमें बच्चों को आने नहीं देते। *जागोरी* ने हाल ही में इन पुरुषों से बातचीत करके इन जगहों को बच्चों के खेलने के लिए खाली कराने के प्रयास किये हैं।

जागोरी की युवा टीम ने जेंडर, लड़कियों की सुरक्षा व उत्पीड़न को लेकर भी यहां बातचीत की शुरूआत की है। हालांकि किसी बदलाव को आंकने के लिए अभी बहुत जल्दी है पर हमारे कार्यक्रमों से जुड़े युवा लड़कों ने अब लड़कियों के साथ छेड़खानी करना बंद कर दिया है तथा वे इस प्रक्रिया को अपने इलाकों के दूसरे हिस्सों तक ले जाने के इच्छुक हैं जिसे बदलाव के सकारात्मक संकेत के रूप में लिया जा सकता है।

अपनी सुरक्षा जांच के दौरान हमने यह भी पाया कि अधिकांश पुनर्वास क्षेत्रों की लड़कियां सार्वजनिक वाहनों में बस चालक व उनके साथियों की अश्लील छींटाकशी, उत्तेजक तेज़ संगीत व पुरुष सवारियों की यौनिक छेड़छाड़ का शिकार होती हैं। इसी परेशानी के कारण मदनपुर खादर जैसी कालोनियों में माता-पिता ने अपनी बेटियों की पढ़ाई-लिखाई बंद कर दी है जिससे वे बसों में होने वाली यौन हिंसा से बची रहें।

उम्रदराज़ महिलाएं भी इन इलाकों में असुरक्षित महसूस करती हैं हालांकि लड़कियों की तुलना में वे छेड़खानी करने वालों को अधिक चुनौती देकर सामना करती हैं। इनमें से काफी औरतें अनौपचारिक क्षेत्र में नौकरी करती हैं और आजीविका कमाने की जद्दोजेहद इन्हें बस, ऑटो या कम रोशनी वाले रास्तों पर चलने को मजबूर करती है।

जहां तक लड़कियों का सवाल है उन्हें दूसरी पुरुष सवारियों, वाहन चालकों व सार्वजनिक परिवहन के कंडक्टरों की हिंसा का सामना करना पड़ता है। सीधी छेड़खानी के अलावा वाहनों में सवार पुरुष लड़कियों पर गाड़ी की तेज़ रफ्तार का बहाना बनाकर गिर जाते हैं या फिर चिपकते-छूते रहते हैं। गाड़ियों में चालक/कंडक्टर के दोस्त सवार रहते हैं जो उन्हें घूरते हैं, अश्लील बातें करते हैं, गाने बजाते हैं और रास्ता रोककर उन्हें तंग करते हैं। यहां तक कि सड़क पर चलना भी लड़कियों के लिए दुश्वार होता है। लड़कियों ने काफी घटनाएं हमारे साथ बांटी जहां रात के समय अचानक पुरुष उनके सामने आ जाते हैं या फिर उनके काम, आने-जाने के समय को लेकर भद्दी बातें बोलते हैं। कभी-कभी तो ये लड़कियों का पीछा करते-करते उनके घरों तक पहुंच जाते हैं। इस इलाके में आने के कुछ महीनों बाद तक इन कामकाजी महिलाओं व लड़कियों ने पुनर्वास इलाकों से शहर तक आने तक के सफ़र को शहर में मौजूद होने से अधिक असुरक्षित बताया।

बस्तियों के टूटने व विस्थापन के बाद इन पुनर्वास बस्तियों में रहने वालों की ज़िंदगी का ब्योरा शहरी गरीब वर्ग विशेषतः औरत के बदतर हालात की एक झलक दिखाता है। जबरन पुनर्वास के कारण आर्थिक तकलीफ़ों के साथ-साथ सामाजिक संबंध के बिखराव को भी सहना पड़ता है। औरतें अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में सुरक्षित महसूस करने के लिए निरंतर नई-नई रणनीतियां बनाती रहती हैं। उनके के लिए सुरक्षा के मुद्दे शहरी जीवन के इस्तेमाल व भागीदारी के अधिकार के साथ नज़दीकी से जुड़े हैं। कुछ मुद्दे समय के साथ परिवर्तित होते जाते हैं पर भौतिक ढांचों की कमी उन पर अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने की ज़िम्मेदारी थोपती चली जाती है।

सीता बोल

बीना अग्रवाल

सीता बोल
सुना तू अपनी कहानी,
बहुत सुन ली
हमने औरों की ज़ुबानी
जनक ने ब्याहा तुझे दशरथपुत्र से
और कहा
पति के हाथ में रहना,
धनुष सी मुड़ी,
झुकी, नमन शील
क्या देखा नहीं तूने
राम का शिव धनुष भंजन?

कहते हैं तूने,
जो थी एक आदर्श
सुता, सिर झुका, सब स्वीकारा
जो पिता के घर से हुई विदा,
पति संग वनवास चुना
क्या न सहा–
दुख, अभाव, अपहरण और
फिर बहिष्करण
दहकती लपटों में ली गई
सत्य की परीक्षा
पीड़ित कर दी गई दोहरी पीड़ा
बन सकती थी क्या पूर्ण लपटें वो
बिना झुलसाये आत्मा को?

कहते हैं तू थी आदर्श रूप पत्नी,
तूने कोई सवाल न पूछा
मान ली उसकी हर इच्छा
वह देवर जो भाई के पक्ष में
भृकुटी तान क्षण में हो जाता है क्रुद्ध
छोड़ गया तुझे
जो थी सगर्भा

चित्र: प्रशांत ए.वी.

घने जंगल में अकेला
न कोई सफ़ाई, न शब्द सांत्वना के
बस भाई का आदेश!

कुछ नागरिकों का संदेह
क्या औरत पर अत्याचार नहीं था
इस योग्य,
जगा सके न्यायप्रिय लक्ष्मण का कोप?
और तुम सीता
परम स्नेहमयी भाभी
सहती रही
चुपचाप हर संताप
लौट जाने दिया
उसे फिर भाई के पास?

ममता से सींचे, खुले वनों के नीचे
पाले तूने जो पुत्र
पूरी सेना को चुनौती
देने की जिनमें थी क्षमता
एक शब्द से निरस्त्र हो गये
बिना हिचकिचाहट चले गये
पिता के पक्ष, भविष्य के राजा
राज पीढ़ी संवारने, उनके पितृत्व
पर न उठा कोई सवाल
फिर भी तेरे सतीत्व पर था
अविश्वास?

स्नेहमयी मां तूने उन्हें भी न रोका
सिर झुका
हाथ जोड़, ली विदा
तैयार हो गई अंतिम परीक्षा के लिए
कहा धरती को
फट पड़-शरण दे!

जिन कवियों ने लिखी तेरी कथा
वह बोले
औरत नहीं रामायण सुनने योग्य
वह तो मात्र पशुवत
केवल प्रहार के योग्य
क्या दे सकती गरिमा
ऐसी कविता,
फिर भी निर्विरोध वह कहते रहे कथा,
ऐसे झूठ को बना दिया प्रथा?

सीता कुछ तो बोल
तू जो खेल खेल में
उठा लेती थी शिव धनुष एक हाथ से
तू जो हिला सकती थी
धरती को एक शब्द से
किस तरह उन्होंने
कर दिया तुझको मौन?

बस अब बहुत हुआ...

अमृता नंदी-जोशी

मैं दिल्ली में जन्मी और पली हूं। यहां मुझसे पहले मेरा शरीर बड़ा हो गया था। होना ही था- मैं एक लड़की जो थी। अपनी तरह की अन्य लड़कियों की ही तरह मैंने पुरुषों की वासना और लोलुप नज़रों को बचपन में ही अनुभव कर लिया था। छुटपन में जाने-अनजाने लोगों के अनचाहे छूने-सहलाने को भी मैंने सहा था। तब मैं शर्मीली, सहमी और उलझी सी महसूस करती थी। मुझे किसी तरह पता था कि ये सब गलत है पर क्यों या कैसे यह नहीं पता था।

एक बार घर के पास ही चलते-चलते मैं यौन छेड़छाड़ का शिकार बन गई थी, पर सड़कें, पार्क व बाज़ार मेरी जगह भी तो थीं। फिर क्यों ये जगहें मुझे हमेशा डराती-धमकाती रहीं? कुछ महिलाओं के लिए घर एक सुरक्षित आश्रय व बाहर की दुनिया कंटीली बाड़ी होती है। और कइयों के लिए घर के गलियारे भी बाहर के रास्तों की तरह वासना व हिंसा के चौराहे। हमारे कस्बों व शहरों की करोड़ों औरतों के लिए सुरक्षित जगहें मौजूद हैं ही नहीं। अब तक मैं जान गई थी कि मेरे लिए खुद से बचना नामुमकिन था।

फिर मैंने अपने कामकाजी जीवन की शुरूआत की और अपनी मासूमियत में मान लिया कि दफ्तर के व्यवसायिक माहौल में सड़क के अनचाहे स्पर्श की कोई जगह नहीं होगी। पर एक बार फिर मैं गलत साबित हुई। जिस संस्थान में मैं नौकरी करती थी उसका वरिष्ठतम अफ़सर, जो अब एक अंतर्राष्ट्रीय विख्यात वैज्ञानिक है, मेमने की खाल में भेड़िया निकला। अधिकांश लोगों के लिए सत्ता और मानसिक श्रेष्ठता के इस 'प्रतीक' का 'मज़ाकिया' व्यवहार व दफ्तर की कुछ महिलाओं के साथ संबंध इस संस्थान का एक दशक पुराना इतिहास था। अपने इस बॉस के गंभीर इरादों से मैंने बड़ी मज़बूती से खुद को बचाए रखा। इसी बीच यह भी पता चला कि काम के सिलसिले में बॉस के साथ विदेश यात्रा पर गई एक सहकर्मी ने अचानक काम पर आना बंद कर दिया।

चित्र: प्रिया कुरियन

मुझे और गहरा सदमा लगा जब मैंने पाया कि इस संस्थान में कोई प्रतिकारी शिकायत सेल नहीं है। लिहाज़ा मैंने एक उम्रदराज़ वरिष्ठ पुरुष अधिकारी से अपनी शिकायत की। पहले तो उसने मेरी बात पर यकीन नहीं किया फिर मुझे सब भूलकर भगवान का ध्यान करने की सलाह दी। जब मैंने नौकरी छोड़कर उच्च शिक्षा के लिए ऑक्सफॉर्ड जाने की बात की तो उसने मेरा दाखिला रद्द करने की धमकी दी। वह खुद एक विदेशी कॉलेज में पढ़ा चुका था इसलिए मुझे डर था कि ऐसा करना उसके लिए मुश्किल नहीं होगा। फिर भी मैं खामोश नहीं रही और अपनी संस्थान की एचआर टीम के पास पहुंची। परन्तु अफ़सोस कि इस टीम, जहां सभी महिलाएं थीं, को भी अधिकारी के यौन प्रस्तावों को सहना पड़ता था। उनके पास मुझे तसल्ली देने के अलावा कुछ नहीं था।

मेरे ये अनुभव सिर्फ़ मेरे नहीं हैं बहुत सी अन्य औरतों के साथ भी यही सब गुज़रा है। फ़र्क़ बस इतना है कि वे इस पर बात नहीं करतीं। पर यह खामोशी एक बहुत बड़ी समस्या है। चुप्पी यौन हिंसा को प्रोत्साहन देती है।

औरतें यौनिक हिंसा को तब तक नज़रअंदाज़ या बर्दाश्त करती रहती हैं जब तक वह असहनीय न हो जाए। सहनशीलता औरतों की मुख्य विशेषता मानी जाती है। अक्सर विवाह के समय माएं अपनी बेटियों को यह सीख देती हैं- अब तुम एक औरत हो, सहना सीखो। सैकड़ों औरतें वैवाहिक संबंधों में घरेलू हिंसा और उत्पीड़न सहती रहती हैं क्योंकि वे एक अच्छी औरत की परिभाषा पर खरा उतारना चाहती हैं। वह औरत जो आवाज़ उठाने की हिम्मत करती है या हिंसा को बर्दाश्त न करे उसे बुरी औरत के नाम से बुलाया जाता है।

महिला आंदोलन की कार्यकर्त्ता आभा भैया के अनुसार "महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों में केवल यौन

हिंसा से जुड़े अपराध ही ऐसे होते हैं जिसमें पीड़ित औरत शर्मिन्दगी महसूस करती हैं व खुद की प्रतिक्रिया खामोशी में कैद कर लेती हैं। वह इस हिंसा को दो बार सहती हैं- एक जब वह हिंसा का शिकार होती हैं और दूसरी बार उस पर चुप्पी की मुहर लगाकर। समाज मानता है कि औरतों का यौनिकता से नकारात्मक संबंध होता है, उनके पास सकारात्मक यौनिक अनुभव होने ही नहीं चाहिए।"

अगर कोई सोचता है कि आज औरत अच्छी व बुरी औरत की रेखाओं को लांघ चुकी है तो वह सच्चाई से कोसों दूर है या फिर किसी एक अपवाद की बात कर रहा है। यह सही है कि पश्चिमी तौर तरीकों का हमारे सांस्कृतिक परिवेश पर प्रभाव पड़ा है, परन्तु हमारे मानस लैगिंक नियमों की गिरफ़्त से अभी भी आज़ाद नहीं हो पाए हैं। लिहाज़ा औरतों को अपनी खामोशी तोड़नी ही होगी।

पर इसके साथ-साथ अब समय आ गया है कि पुरुष भी इस विषय पर अपनी खामोशी तोड़ें। "महिला संबंधी मुद्दों" की पैरवी अधिकतर महिला कार्यकर्त्ता ही करती हैं। पर क्या यौन हिंसा पुरुषों का मुद्दा नहीं है? क्या उनका इससे कोई सरोकार नहीं है? ये लैंगिक विभाजन क्यों है? आखिरकार यौन हिंसा का सीधा संबंध पुरुषों से भी तो है। अगर पुरुष हर तरह की यौन हिंसा को जड़ से खत्म करने में हिस्सा लेंगे और इस केन्द्रिय प्रश्न को सम्बोधित करने में आगे बढ़ेंगे कि वास्तव में असली मर्द कौन होता है तो इस समस्या को सुलझाया जा सकेगा। अब समय आ गया है कि सचेत पुरुष "मर्दानगी" की कैद तोड़ें और उसके बेतुके मूल्यों का पर्दाफ़ाश करें।

यकीनन महिलाओं के साथ यौन हिंसा एक "आदर्श मर्दानगी" साबित करने का नतीजा होती है। मर्दानगी परिभाषित करती है कि असली मर्द कौन है- वो जो ताकतवर, वीर और दबंग हो, जो रोता नहीं हो, सिगरेट व शराब का सेवन करता हो, गाली-गलौज करता हो और इस व्यवहार में अपनी शान समझे। जब ये झूठे आदर्श औरतों को वस्तु समझने वाली संस्कृति में अपनी वैधता पाते हैं तभी पुरुषों के दिलो-दिमाग पर ये सशक्त पहचान के प्रतीक के रूप में हावी होते हैं। परियों की कहानियों में एक आदर्श राजकुमार की छवि इन्हीं से साकार होती है। विज्ञापनों में सिलसिलेवार तरीकों से यह बताया जाता है कि 'मर्द' क्या पहनें व खाएं और पुरुषों व स्त्रियों के साथ कैसे व्यवहार करें। फ़िल्मों में भी छेड़छाड़ की 'नॉर्मल' प्रस्तुति यौन उत्पीड़न को साधारण और आम बना देती है।

इस सांस्कृतिक परिवेश के चलते युवा लड़के अपनी 'मर्दानी भूमिका' गर्व के साथ निभाते हैं। युवाओं के लिए शाहरुख खान की मालबोरो सिगरेट व महेंद्र सिंह धोनी के बालों के स्टाईल का अनुसरण आज के दौर का हिस्सा बन जाता है। सड़कों पर औरतों के साथ छेड़छाड़ व छींटाकशी जवानी की कगार पर खड़े लड़कों के लिए रस्म का रूप इख्तियार कर लेती है। ये रस्म उन्हें ताकत का एहसास कराती है, बिल्कुल "असली मर्दों" की तरह। शोध व अध्ययन यह दावा करते हैं कि इस प्रकार की यौन हिंसा का असल उद्देश्य यौन से जुड़ा नहीं होता बल्कि पुरुषों का औरतों पर सत्ता प्रदर्शन और उससे मिलने वाला मज़ा होता है।

यह स्पष्ट है कि पुरुषों को पिता-भाई या फिर फ़िल्म, क्रिकेट स्टार के रूप में अहम भूमिका निभानी है। लड़कों को स्कूलों व परिवारों में जेंडर की समझ उसकी दकियानूसी भूमिकाओं व्यवहारों और अंतर्संबंधों की जानकारी देना बहुत आवश्यक है। कहने का अर्थ यह नहीं है कि लड़कियों को आदर्श ज़नानगी का पाठ पढ़ाने वाले व्यवहारों और सोच में परिवर्तन करना महत्वपूर्ण नहीं है। इस दिशा में एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण कोशिश शुरू की भी जा चुकी है। लखनऊ में *मासवा* व पुणे में *मावा* संगठन पुरुषों को संवेदनशील बनाने की दिशा में अपना योगदान दे रहे हैं। दिल्ली में *आकार मीडिया ट्रस्ट* शोध, वृत्तचित्र व सेमिनारों के माध्यम से संस्कृति, जेंडर और मर्दानगी के विषय पर कार्यरत है।

इन सभी प्रयासों को विशाल आंदोलन का रूप लेने के लिए पुरुषों व स्त्रियों को अपनी आवाज़ उठानी होगी, और जब वे इस दिशा में कदम बढ़ाएं तो सबसे पहले उन्हें यौन हिंसा जैसे घोर अपराधों को 'छेड़छाड़' कहकर टालने के रवैयों को बदलने की पहल करनी होगी। हमारे सांस्कृतिक परिवेश में कुछ अतिवादी मूलभूत परिवर्तन करने की बहुत अहम ज़रूरत है। उम्मीद है हमारे पुरुष इस मुहिम से जुड़ने के लिए तैयार हैं।

पप्पू

❶

❷

❸

❹

परिकल्पनाः आलेख व प्रस्तुतिः सहजो सिंह • चित्रकलाः अनुपमा चैटर्जी हारा लेआउटः शुभा बरारा • सहयोगः अनन्त मिश्रा

जागोरी द्वारा सुरक्षित दिल्ली अभियान के लिए प्रयुक्त पैनल।

कहानी

मेरा घर कहां?

नासिरा शर्मा

लाली धोबिन की मिट्टी तभी से पलीद थी जब से उसका मरद मरा था। तीन बच्चों के संग अड्डे पर जाना और घर-घर से जाकर कपड़े समेटना अब उसके बस की बात नहीं रह गयी थी। छोटा लड़का साल भर का था। कभी गरम इस्त्री पकड़ लेता तो कभी धुले कपड़े पर अपना लकड़ी का चटुआ फेंक धब्बा लगा देता। तंग आकर लाली ने घरों में काम करने की ठानी। बरतन, झाड़ू और आटा गूंधने से उसके पास इतने पैसे आने लगे कि वह चैन से रोटी के साथ लहसुन की चटनी खा सकती थी।

बड़ी लड़की सोना दस-ग्यारह साल की हो रही थी। मोहल्ले के लड़कों के आकर्षण का केन्द्र थी। गन्दे नाले के पास बसी यह झुग्गियां बिना पानी के बजबजाती रहती थीं। हर तरह की गाली और धन्धे यहां के लागों की दिनचर्या थी। फैशनेबल कालोनी के सामने बसी यह बस्ती अपने में एक हकीकत थी। लाली के पति राजा ने इस खाली मैदान में औरों की तरह कब्ज़ा पाने की नीयत से झुग्गी डाली थी। गांव में बेरोज़गारी से तंग आकर दोनों शहर की तरफ निकले थे। कुछ दिन चैन से गुज़रे। फिर उसे लत लग गयी पन्नी पीने की और उसी के चलते वह एक दिन नशे की हालत में चल बसा।

जवान होती लड़की को बचाने के चक्कर में लाली ने हालात के सामने हथियार डाल दिये और रोज़-रोज़ राह रोकने वाले अधेड़ बदमाश दिगम्बर दादा के घर बैठ गयी। अब उसके तेवर दूसरे थे। दिगम्बर का बस्ती पर दबदबा था। चाकू, कट्टा, लाठी, जंजी उसके खिलौने थे। दिगम्बर की घरवाली को मरे चार-पांच साल गुज़र गये थे। इस बीच दिगम्बर भी औरतों को पटाते हुए और ज़ोर-ज़बरदस्ती करते-करते थक चुका था। उसे घर में रोटी के साथ पैर दबाने वाली एक औरत की ज़रूरत थी। कई महीनों तक नीम के नीचे बैठी लूली फकीरन के बारे में सोचता रहता कि जवान है, सुन्दर है मगर दोनों हाथ...? यहीं पर आकर रुक जाता, जबकि फकीरन राजी थी। उन्हीं दिनों लाली जब किसी लौण्डे की शिकायत लेकर आयी तो उसने फैसला कर लिया कि इस धोबिन को अपने घर के घाट से कहीं जाने नहीं दूंगा।

लाली की लड़की सोना को जो तीन वक्त खाने को मिलने लगा तो उसकी आंखों में तरावट और बदन पर गदबदापन आने लगा। उम्र भी रस्सी कूदती तेरह पार कर चौदहवें में लग रही थीं। लाली को उसकी शादी की फिक्र थी। सोना भूख का मज़ा चख चुकी थी सो दिगम्बर दादा के पैर दबाने, भांग पीसने और सर में तेल लगाने पर उसे कोई ऐतराज़ न होता। मगर शादी से उसकी जान निकलती कि जाने कहां मां भेजे और सारे दिन खटने के बाद फिर वही रोटी और चटनी के लिए खिटपिट। मगर लाली अब उठते-बैठते उसके दिमाग में इन जुमलों की सुइयां चुभोती कि लड़की का असली घर शौहर का होता है। मां-बाप तो बस लड़की के पालने वाले होते हैं। यही दुनिया का कायदा कानून है।

सोना का ब्याह बिरादरी को खाना खिला, बाजे-गाजे, दहेज के संग नन्कू के साथ हो गया। निकाह के बाद नन्कू सोना को विदा करा अपने घर मंगोलपुरी ले गया। उसका परिवार बड़ा था। फूफी, ताई और उसकी मां विधवा होकर एक साथ रहती थीं और प्लास्टिक की चप्पलों के तले के तीन छेदों में पट्टा डालने का काम करती थीं। वही उनकी रोजी-रोटी थी। नन्कू सुबह जाकर आठ-दस गट्ठर तले और पट्टे ले आता था। नन्कू के पास एक कमरा था। उसी में खाना-पीना, सोना-बिछौना था।

सोना नई दुल्हन थी। तीन विधवाओं के बीच खाना पकाना, सजना-संवरना और पति के संग कुछ घण्टे अकेले कमरे में रहना उसकी ज़िम्मेदारी थी। बाहर धूप या छांव में बैठ तीनों काम करतीं और दोपहर में पांचों साथ खाना खाकर कुछ देर सुस्ताते थे। ऐसी ज़िन्दगी सोना ने कभी जी नहीं थी। वह झुग्गियों में खेलकर बड़ी हुई थी। फिर पांच-छह साल की थी जब से घर-घर इस्त्री के कपड़े मां-बाप के साथ मांगने जाती और जब दिगम्बर दादा की रखैल की बेटी कहलायी तो अकड़कर चलना सीख गयी। परेशान करने वाले लड़कों की उसने ऐसी खबर ली थी कि वह सोना को देख रास्ता बदल लेते थे। यह शादी भी दिगम्बर दादा के दबदबे के चलते हुई थी। नन्कू पहले नशे की पुड़िया बेचता था। एक दिन पुलिस पकड़कर ले गयी थी। उस समय दिगम्बर जाकर छुड़ा लाया था। वहां की मार से डरकर उसने स्मैक के धन्धे से तौबा कर ली थी। अब जो शरीफ़ बना तो उसे सोना का चटपट हर एक से बात करना, हंसना-बोलना बहुत अखरता था। खासकर तब जब सब जानते थे कि सोना की मां लाली धोबिन दिगम्बर दादा की रखैल है।

सभी जानते थे कि दंगे-फसाद में लूट का माल दिगम्बर के घर भरा था। इस बार जो बम फटा तो दिगम्बर उसमें उड़ गया। लाली की दुनिया उजड़ गयी। उसको डर ने घेर लिया कि कहीं उसको बस्ती वाले लूट न लें या फिर दिगम्बर का दाहिना हाथ कहलाने वाला रग्घू उसको अपनी रखैल न बना ले। अब हालात ऐसे थे नहीं कि जो उसे किसी मर्द की ज़रूरत पड़ती। इसलिए वह झटपट सीमापुरी में मकान ले, पहलवान की ट्रक पर सारा सामान लदवा रातों-रात झुग्गी छोड़कर भाग ली। हफ़्तों उसने अपनी खैर खबर सोना को न दी। सच पूछा जाये तो वह अब अपनी ज़िन्दगी को अपनी तरह जीना चाहती थी। उसके पास माल काफी था। दोनों लड़कों का नाम वह स्कूल में लिखवा चुकी थी। रोज़ के खरचे के लिए उसने कपड़े इस्त्री करने फिर शुरू कर दिये थे। इससे मोहल्ले में जान-पहचान जल्दी बन गयी और यह बताने में आसानी हुई कि उसका पति राजा पुलिस लाइन में धोबी था। मरने के बाद नौकरी गयी सो इस मोहल्ले में आन बसी।

सोना को नन्कू ने जब मोहल्ले के जवान लड़कों के संग कई बार हंसते-बोलते देखा और जब मना करने पर भी कहा न मानी तो उसने सोना की जमकर पिटाई कर दी। बदले में सोना ने भी नन्कू के सर पर बेलन दे मारा। तीनों विधवाओं ने ऐसी लड़की कहां देखी थी जो मियां को पीटकर रख दे? सो उठते-बैठते बुरा-भला कहतीं। दिगम्बर के मरने से वह डर भी खत्म हो गया कि सोना मायके जाकर उनकी शिकायत करेगी और अब तो उसकी मां भी लापता थी। ऐसी हालत में जो होता है वही हुआ। बढ़ती लड़ाई से तंग आकर नन्कू ने सोना को घर से निकाल दिया। उसने जब अपने कपड़े और बिस्तर मांगा तो जवाब में सबने मिलकर उसके गहने भी उतरवा लिये और उसे धमकाया कि यह उसका घर नहीं है जो फिर यहां कदम रखा तो पैर काट दिए जायेंगे।

सोना एक बार फिर सड़क पर बेसहारा खड़ी थी। बाप और पति के घर का जादू झूठा साबित हुआ। मां का पता नहीं था। उसका दूर का चाचा नीतिबाग में इस्त्री का काम करता था। पिता के मरने के बाद एक-दो बार आया था। वहीं एक सहारा बचा था। रोती-धोती वह मंगोलपुरी से नीतिबाग, बिना बस का किराया भाड़े, पहुंच गयी। बड़ी-बड़ी कोठियों के बीच वह चाचा को कहां ढूंढ़े? एक-दो फल के ठेलेवालों से उसने पूछा कि रमज़ान धोबी को जानते हो? जबाब न में मिला। आखिर थककर वह पेड़ के नीचे बैठ गयी जिसके पास किसी घनश्याम धोबी का अड्डा था। कुछ देर बाद घनश्याम कपड़े देकर लौटा तो सोना ने उससे रमज़ान के बारे में पूछा।

चित्र: प्रशांत ए.वी.

"तू कैसे जानती है उसे?"

"वह मेरा चाचा है, मेरे अब्बा राजा का दूर का रिश्तेदार। उसके मरने पर आया था।"

"तू..."

"मैं सोना हूं। मेरा ब्याह मंगोलपुरी के नन्कू के साथ मां ने किया था। उसने मुझे मारपीट कर निकाल दिया। मां जाने कहां चली गयी है दिगम्बर दादा के मरने के बाद। अब मेरा सहारा कोई नहीं है, कहां जाऊं?"

"मेरे झोंपड़े चल... वहीं रह। आखिर मेरी भी कोई ज़िम्मेदारी बनती है न!"

"मतलब तू..." अकड़कर खड़ी हो गयी सोना।

"मैं रमज़ान हूं। नाम बदल लिया है। सुख से रहता हूं। घरवाली गांव गयी है। झोपड़ी में रह ले कुछ दिन। काम ढूंढ दूंगा किसी कोठी में... रमज़ान ने हंसकर कहा। उसकी बात सुन सोना की चढ़ी सांस की गति मद्धिम पड़ी और गुस्सा काफूर हुआ।

रमज़ान चाचा उर्फ़ घनश्याम प्रेस वाले की झोंपड़ी जो कुछ दूर पर थी, वहां जाकर सोना ने चैन की सांस ली और भर गिलास चाय बना पी और बिखरे बरतन, कपड़े समेटने में लग गयी। उसका माथा अभी घूमा हुआ था। ज़िन्दगी के इस बदलाव से अभी वह समझौता नहीं कर पा रही थी। दुःख-सुख तो लगा ही रहता है मगर इतनी उठा-पटक भी कैसी कि सर से छत ही छिन जाये और कहने को कोई घर न बचे?

कुछ दिन इस इंतज़ार में गुज़र गये कि शायद नन्कू उसे लेने आ जाये और बात रफा-दफा हो जाये। इस बीच रमज़ान नन्कू के घर दो बार हो भी आया मगर वे सोना को वापस बुलाने पर किसी तरह राजी न हुए। रमज़ान की परेशानी यह थी कि चार हफ़्ते बाद घरवाली मायके से तीन बच्चों के साथ टपकने वाली थी। सोना को देखकर उसका माथा फिर जायेगा। सोना को कहीं काम नहीं मिल रहा था। तंग आकर एक दिन सोना खुद मंगोलपुरी गयी ताकि लड़-लड़ाकर अपना हक़ जमाये और फिर से रहना शुरू कर दे। मगर वहां पहुंचकर हाथों के तोते उड़ गये।

घर के सामने झिलमिल पन्नियों का नन्हा-सा छत्तुर बना था। औरतें गाना गा रही थीं। सामने पड़े पतीलों पर कुछ चढ़ा था। सोना जो और आगे बढ़ी तो देखा नन्कू दूल्हा बना बैठा है और पास में गठरी बनी लाल कपड़ों में दुल्हन। अन्दर से उठा उसका गुस्सा उसके सर चढ़ गया। पैरों की चप्पल उतार उसने पीछे से जाकर नन्कू के सर-पीठ पर जी-भर कर जमायी। खुशी का माहौल थम गया। कई पल तक किसी के समझ में नहीं आया कि यह हुआ क्या, दूल्हे का सेहरा, हार नोचकर किसने फेंका। दुल्हन भी घूंघट उठाकर हैरत से शौहर को पिटता देख रही थी।

पल-भर बाद दृश्य दूसरा था। तीनों विधवायें सोना का झोंटा पकड़ कर बकरी की तरह उसे इधर-उधर घसीट रही थीं। दूल्हा तब ज़रा होश में आया। किराये पर ली चमचमाती शेरवानी का कालर उधड़ा देखा और पगड़ी को कीचड़ में लोटता तो उसका पारा सातवें आसमान में जा चढ़ा। लातों की बारिश उसने सोना के कूल्हे-पीठ पर इस तरह करनी शुरू कर दी जैसे धोबी-घाट पर कपड़े पछाड़ता हो। यह हाल देख लड़की वाले परेशान हो उठे। दुल्हन जाकर मां से लिपट गयी और बाकी लोग दुम दबाकर भागने लगे। तभी अधमरी सोना को नाली के पास छोड़कर नन्कू तैश में पलटा और चूल्हे के पास चाकू उठाकर उसे ससुरालवालों को दिखाकर उसी जुनूनी कैफ़ियत में चिल्लाकर सबसे कहा, "कोई जाने न पाये वरना सर धड़ से अलग कर दिया जायेगा।"

चित्र: प्रशांत ए.वी.

कौन से हज़ारों मेहमान थे। कुल पन्द्रह-बीस की भीड़ थी। जान किसे प्यारी नहीं होती सो सब दम साधकर बैठ गये। तीनों विधवाओं ने टीन की कुर्सी पर दुल्हन को बिठाया और लाल दुपट्टे का साफा नन्कू के सर पर बांध, उसे दूसरी कुर्सी पर बिठा पहले की तरह ढोलक लेकर बैठ गयीं। सोहाग के गाने की तान में लोगों की खुसर-पुसुर गुम हो गयी। सोना ने कराहकर सर उठाया तो देखा वहां कुछ भी नहीं बदला था। फिर अपने को ताका जहां बहुत कुछ बदल चुका था। किसी तरह उठकर लड़खड़ाती खड़ी हुई और बस स्टॉप की तरफ बढ़ने लगी।

सोना जख्मी कबूतरी की तरह टूटे डैनों के संग जब रमज़ान के पास पहुंची तब तक वह एक बोतल संतरा चढ़ा नशे में धुत्त औंधा पड़ा था। सोना ने हल्दी का लेप खुद ही चोटों पर लगाया और चुपचाप

लेटकर सोचने लगी कि वह कई दिनों तक चलने-फिरने के काबिल नहीं रह पायेगी, वरना कल से वह भी एक मेज़ डाल इस्त्री का अड्डा बना लेती। मगर अब तो... सुबह जब रमज़ान की आंख खुली तो सोना को बुखार में तपते देखा। डॉक्टर ने इंजेक्शन लगाकर दवाइयां दी, जिससे सोना रात तक संभल गयी और बुखार भी उतर गया। रमज़ान का दिल लड़की के लिए दुःख रहा था। उसकी मां को कहां ढूंढे जो सोना को जाकर उसके सुपुर्द कर दे। सारे दिन अड्डे पर इसी उधेड़बुन में रहा।

पीली कोठी में सोना को झाड़ू-पोंछे की नौकरी मिल गयी थी। उससे पहले उसने इस्त्री करना चाहा तो कपड़ा जला दिया। ज़िन्दगी में अपना खानदानी पेशा कभी किया हो तो जानती। वह तो बस कपड़ा जमा करने का काम जानती थी, जो रमज़ान को पसन्द न था। वह कोठी वालों को जानता था। साहब लोगों से शाही आदतों के उनके नौकर और ड्राइवर होते हैं तो भी वह सोना को रोक नहीं सकता था। आखिर उसकी घरवाली के लौटने में दो दिन बाकी थे। इस बीच सोना ने मालकिन को खुश कर गैरज में सोने की इजाज़त ले ही ली। यह जानकर रमज़ान ने राहत की सांस भरी।

सोना अब पूरे अट्ठारह साल की हो रही थी। इसी बीच उसने छह-सात ठिकाने बदले थे। जहां जमने लगती वहीं से उखाड़ दी जाती। इस कोठी में भी हज़ारों काम मुफ्त करती कि रात को बन्द जगह सोने को मिल जाये। झाड़ू-पोंछा कर जब गरम प्याला चाय पीती तो भूखी अंतड़िया ऐंठने लगतीं। बंधा-बंधाया खाने का हिसाब तो था नहीं। कभी कोठी से मिल गया, तो कभी रमज़ान ने अपनी रोटी थमा दी। मगर उधर जब उसके हाथ में दो सौ के नोट आए तो उसने दोपहर को पिछवाड़े वाले ढाबे पर दो रोटी और साथ में मिली दाल खानी शुरू कर दी। कपड़ा, चप्पल, शॉल मेम साहब की उतरन मिल गयी थी। चादर भी बिछाने को उन्हीं ने दे दी थी। ज़िन्दगी में ठहराव-सा आ गया था।

एक रात जब सोना गहरी नींद सो रही थी तो उसे सपने में लगा कि उसकी मां उसे सीने से लिपटा प्यार कर रही है। फिर उसे लगा कि दो मज़बूत बांहें उसे अपने कसाव में पकड़ रही हैं। इतने दिनों बाद पति का स्पर्श उसे सोते में सुख दे रहा था। तभी ठण्ड की झुरझुरी से वह जाग उठी। अंधेरे में उस पर कोई झुका था। उसकी गरम सांसें उसके चेहरे को छू रही थी। खुशबू का एक झोंका बहा। सपनों और नींद ने सब कुछ धुंधला-सा दिया मगर यह खुशबू? नन्कू के पास से तो पसीने की गंध आती थी...?

"कौन... कौन?" सहमी-सी सोना बोली।

"चुप... किसी को पता भी नहीं चलेगा... उठ चल मेरे कमरे में वहां नरम बिस्तर है आराम से लेटना... उठ।"

"छोटे साहब!" चौंक पड़ी सोना।

पीठ सहलाते हाथों को उसने झटका और उछलकर खड़ी हो गयी। मरदाने हाथों की जकड़न बढ़ी तो उसने बाजुओं पर नुकीले दांत गाड़ दिये। दर्द की शिद्दत से गिरफ़्त ढीली पड़ी। मगर उसी के साथ एक ज़ोरदार चांटा सोना के गाल पर पड़ा। उसकी आंखों के सामने तारे टूटे। वह लड़खड़ा कर दीवार से टकरायी। तभी उसे महसूस हुआ कि हाथों की वहशत फिर सांप बन उसे जकड़न में ले रही है। कुछ देर वह सांस रोके बेजान-सी खड़ी रही। उसे बेहोश जानकर छोटे साहब ने ज़मीन पर लिटाया... और तभी उसने पूरी ताकत से लात सीने पर मारी और कार और साइकिल के औज़ारों के बीच से कुछ उठाया और भरपूर हाथों से छोटे साहब के सर पर दे मारा।

गुलाबी ठण्ड में सड़क के किनारे बैठी सोना जाड़े से कांप रही थी। उसे अपने कपड़े की गठरी और चादर याद आ रही थी। उसने बहते आंसुओं को पोंछा और थका बदन घसीटा। पौ फटने से पहले उसे यह इलाका छोड़ना पड़ेगा। पता नहीं छोटे साहब का सर फटा या... पुलिस में रपट लिखवायी गयी तो वह बच नहीं पायेगी। कहां जाये? सड़क के किनारे चलते-चलते उसके बदन में गरमी आयी। पैर में कुछ चुभने से उसे रुकना पड़ा। कांटा निकालते हुए उसे अपने बाप की झुग्गी का ख्याल आया। बाप की याद से वहीं बैठे-बैठे फफक पड़ी। न वह मरता न उसकी सबकी गत बनती।

वह बस्ती बदली नहीं थी। बिना पानी के गन्दगी से बजबजाती हुई वहां झुग्गियों की तादाद बढ़ गयी थी। आधे से ज़्यादा लोग नये थे। पुराने अपना कब्ज़ा बेच कहीं चले गये थे। वहां से जब निराश लौटने लगी तो उसे ध्यान आया कि रग्घू दादा से मिलती जाऊं। शायद कोई काम बन जाये। रग्घू ने उसे ठहरने की एक जगह दे दी। दिगम्बर के रिश्ते से उसे थोड़ा-बहुत नकद भी दिया ताकि अपनी ज़िन्दगी बसा सके। कोठियों में उसका अनुभव कड़वा था मगर काम मांगने कहां जाती? हारकर वहीं पहुंची और काम कर अपने ठिकाने लौट आती। पन्द्रह-बीस दिनों में वह पुरानी कड़वाहट भूलकर फिर से अपने को खुश रखने लगी और उसने तय किया कि बाकी ज़िन्दगी अब वह इसी बस्ती में गुज़ार देगी।

सोना की दूसरी शादी की बात रमज़ान ने एक-दो लोगों से चलायी थी जिन्होंने सोना को रमज़ान के घर देख पसन्द किया था। मगर जैसे ही उन्हें पता चला कि यह छोड़ी हुई औरत है, उनका नज़रिया ही सोना की तरफ से बदल गया। बिना तलाक वाली औरत कौन घर में रखकर मुसीबत मोल लेगा?

"चाचा, तुम काहे इन सबके चक्कर में पड़े हो, मुझे नौकरी दिलवा दो अभी। ठिकाना मिल जाये तो दिमाग सही बात सोचेगा।" सोना रमज़ान की परेशानी देख खीझ उठती।

धोबियों में लाली की बात किसी से छुपी न थी। कहने वालों ने तो यहां तक भी कह दिया कि मां को देखना हो तो बेटी को देखो और जो बेटी को देखना हो तो मां को देख लो। सोना आखिर उसी लाली धोबिन की बेटी है न, जो दिगम्बर के साथ बैठ गयी। तो फिर सोना कैसे अपना घर बसाये रखती? उसे भी तो कोई-न-कोई पैसे वाला मर्द चाहिए होगा। तभी शौहर के घर से भागकर चाचा के घर पड़ी है। इन सारी बातों से रमज़ान का दिमाग भनभनाने लगता था। अपने दोस्त राजा की याद उसे आती कि दोनों एक साथ गांव से निकले थे। इस बड़े शहर की भीड़ में दोनों अलग हुए तो फिर मौत के दिन ही राजा का चेहरा देख पाया था। अब तो सोना की उसी बस्ती से जमने की खबर रमज़ान को मिली तो वह बड़ा खुश हुआ।

वह दोपहर भी मनहूस थी जब बुलडोज़र ने उसकी झुग्गी के संग सारी बस्ती उजाड़ दी। वह ज़मीन किसी ठेकेदार ने खरीद ली थी। वहां पर वह एक सिनेमा हॉल बनाना चाहता था। रग्घू दादा की भी कुछ न चली और लुटा-पिटा गरीबों का काफिला अपने ही घर के मलबे पर रात गुज़ारने पर मजबूर हुआ। सोना का दिल उस रात से चारदीवारी की चाहत से मुक्त हो गया। उसने मिट्टी के ढेर पर बैठ-बैठे सामने कतार से खड़े पक्के ऊंचे मकानों और कोठियों को देखा। फिर वहीं ढेर पर लेट गयी। ऊपर आसमान पर तारे छिटक रहे थे। उन्हें देख सोना का दिल हल्का हुआ और अन्दर से एक हंसी फूटी। उसकी चौकन्नी आंखें पहले से ज़्यादा चमकदार हो उठीं।

चित्र: प्रशांत ए.बी.

इस बस्ती के मलबे के ढेर के सामने सोना ने चलता-फिरता ढाबा खोल लिया। सुबह से चाय भट्ठी पर चढ़ जाती और दोपहर को आलू-गोभी की सब्ज़ी के साथ रोटी बनने लगती। मज़दूरों को खिलाकर जब वह परात में बचे आटे की दो लोई को अपने लिए बेलती तो सुख का एक असीमित सागर सीने में मचलता। उसका मस्त चेहरा देखकर अक्सर मज़दूर उसके संग ब्याह रचाने की बातें कहते तो वह खिलखिलाकर हंस पड़ती। फिर गम्भीर होकर पूछती, "एक रोटी और ले ले ताकि फज़ूल बातों की जगह न तेरे पेट में बचे, न दिमाग में..." मज़दूर खिसियाकर उठ जाता और सोना ज़मीन पर थूक देती, जैसे कह रही हो कि इस दुनिया के हर कोने पर मर्द खड़ा मिलेगा, कभी प्रेमी के रूप में तो कभी बलात्कारी के रूप में। मगर जो पति ढूंढने निकलो तो एक भी कायदे का आदमी नज़र नहीं आएगा, जिसके साथ उम्र एक छत के नीचे गुज़ार दी जाये। मैं तो यूं ही भली। न कोई मेरा ठौर-ठिकाना, न मैं किसी घर की मालकिन। दुनिया की आबादी हूं और हालात की शहज़ादी हूं। इन मर्दों को अब यह कौन समझाए?

ट्रिंग–ट्रिंग

❶

❷

❸

❹

परिकल्पनाः आलेख व प्रस्तुतिः सहजो सिंह • चित्रकलाः अनुपमा चैटर्जी हारा
लेआउटः शुभा बरारा • सहयोगः अनन्त मिश्रा

जागोरी द्वारा सुरक्षित दिल्ली अभियान के लिए प्रयुक्त पैनल।

क्यों होती है 'ईव-टीज़िंग'?

सुनीता ठाकुर

प्रायः किशोरावस्था 10-16 साल तक के बीच की उम्र को माना जाता है। यही वह उम्र होती है जब शरीर और मन में अनेक बदलाव और विकास होते हैं। खासतौर से लड़कियां अपने शारीरिक बदलावों और माहवारी के जिस दौर से गुज़रती हैं, उसमें उन्हें ठीक से शरीर के बदलावों के बारे में बताने वाला भी नहीं होता, उनकी तकलीफ समझना तो दूर की बात है। परिवार में दादी, चाची से लेकर मां तक उन पर प्रतिबंधों और हिदायतों का बोझ लादे रहती हैं। घरेलू ज़िम्मेदारियों और बड़े होने का एहसास उनमें अकेलापन और भावनात्मक उथल-पुथल पैदा करता है।

ऐसे हालातों में उनके प्रति परिवार और पास-पड़ोस के लड़कों/मर्दों का नज़रिया भी बदलता है। उनके प्रति होने वाले यौनिक अपराधों की मुख्य शक्ल आपसी छेड़छाड़ यानि ईव-टीज़िंग होती है जिसका असर उन पर कई तरह से पड़ता है। वे अकसर समझ ही नहीं पाती हैं कि अचानक उनमें ऐसा क्या बदलाव हुआ है कि वे इस तरह छेड़छाड़ का शिकार बन रही हैं। परिवार की महिलायें तक उनसे छोटी-मोटी छेड़खानी कर उठती हैं, बिना यह सोचे समझे कि उन पर इसका क्या असर होगा। अल्प शारीरिक ज्ञान के रहते अकसर लड़कियां भी इसे उतनी गम्भीरता से नहीं ले पातीं और यह चलता रहता है। कभी कोई सोचता ही नहीं कि यह छेड़छाड़ उनके मन और दिमाग को कितनी तकलीफ़ पहुंचाती होगी। परिवार में वे या तो इस पर बात नहीं करती है और अगर करती भी हैं तो अकसर उनकी आवाजाही पर ही बंदिश लगाई जाती है।

भावनात्मक परिवर्तनों के चलते ऐसे यौनिक संदेशों, छेड़छाड़ और मज़ाक वे काफी गम्भीरता से ले उठती हैं। माता-पिता प्रारम्भ में उनके प्रति होने वाली छेड़छाड़ को गम्भीरता से नहीं ले पाते क्योंकि ये छेड़छाड़ कभी रिश्तों के आड़ में छिप जाती है तो कभी सामाजिक लोक-लाज, इज़्ज़त के सवालों में दबकर रह जाती है।

मैंने सोचा कि क्यों न इस विषय पर मैं कुछ किशोरियों-युवतियों से बात करूं और जानने का प्रयास करूं कि इस छेड़छाड़ के मुद्दे पर वे क्या सोचती हैं। लड़कियों से इस विषय पर बात करना पहले पहल तो काफी मुश्किल लगा क्योंकि उनके लिए भी इस पर बात करना तथा इससे जुड़े गुस्से को शब्दों में बांध पाना मुश्किल था। ऐसी हरकतों का शिकार उन्हें हर जगह होना पड़ता था और वह चाहकर भी घूरती आंखों, मुस्कराते, इशारे करते होठों और हाथों को रोक नहीं पातीं। कभी शिकायत करने पर उल्टा लड़कियों को ही तमाम हिदायतें दी जाती हैं, जैसे 'तुम ही ठीक से नहीं चल रही होंगी' या 'इतने बुजुर्ग आदमी के ऊपर तोहमत लगाते शर्म नहीं आती, लड़कियों को ज़रा दबकर ही चलना चाहिए' आदि। उस पर तुर्रा यह कि जिस चीज़ को हमारे समाज ने मान्यता दी हुई हो उसके लिए आपको क्या समस्या है, यह सब तो सदियों से होता ही रहा है।

किशोरियों के साथ होने वाली यौनिक छेड़छाड़ या ईव-टीज़िंग के सन्दर्भ में सबसे पहले तो हम यह समझें कि किशोरियों/युवतियों और महिलाओं के साथ होने वाली छेड़छाड़ में क्या अन्तर होता है? हमें हंसी-मज़ाक व छेड़छाड़ के बीच अन्तर को भी समझना होगा। यह सोचना होगा कि क्या आम हंसी-मज़ाक भी ईव-टीज़िंग हो सकता है? क्या है यह ईव-टीज़िंग, जो बाकी सबके लिए तो सिर्फ़ एक आम बात है पर किशोरियों या युवतियों के लिए ठेस पहुंचाने वाली बात।

किशोरियों/युवतियों के साथ छेड़छाड़ कोई आज की समस्या नहीं है। बहुत पुराने समय से रिश्तों में आपसी हंसी-मज़ाक और छेड़छाड़ पारिवारिक सम्बंधों की पहचान रही है। इतना कभी सोचा ही नहीं गया था कि सरेआम किया गया हंसी-मज़ाक उनकी गरिमा को ठेस भी पहुंचा सकता है। ईव-टीज़िंग को आम हंसी-मज़ाक से जोड़कर

निहायत हलका बना दिया गया है। यह एक संगीत अपराध है जिसे समाज ने हंसी-मज़ाक का जामा पहनाकर ढक दिया है।

पारिवारिक रिश्तों में होने वाली हंसी-मज़ाक में- आपसी समझ, प्रेम और सहभागिता, सहमति, खुलापन, एक दूसरे की इज़्ज़त और अपनेपन का एहसास दोनों तरफा होता है। जबकि छेड़छाड़ या ईव-टीज़िंग में यही सब बातें नदारद होती हैं। इसमें थोपा हुआ अपनापन, औरत को खिलौना मानने की प्रवृत्ति, मज़ाक की आड़ में अपमान, नीचा दिखाना व मनमानापन होता है। नतीजतन वह एक ज़्यादती बन जाती है और सामाजिक स्वीकृति के कारण किशोरियां उसका विरोध नहीं कर पाती तथा सहती रहती हैं। मुंह खोलने पर उन्हें नकचढ़ी, चिड़चिड़ी, अपने में सिमटी हुई, घमण्डी जैसी तमाम संज्ञाएं दे दी जाती हैं। अपराधी खुलेआम घूमते रहते हैं और उनका हौसला घर व रिश्तों से बाहर सड़कों, बसों में भी गुल खिलाने लगता है।

हमें यह सोचना होगा कि क्या कोई हंसी-मज़ाक किसी को ठेस पहुंचा सकता है? क्या किसी की गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली बात हंसी-मज़ाक हो सकती है? हमारे मुताबिक हर वो मज़ाक जो किसी लड़की या औरत को औरत होने के नाते ठेस पहुंचाए छेड़छाड़ का ही रूप है। यह सिर्फ़ एक मज़ाक का मुद्दा नहीं हैं, वह लड़की पर यौनिक और शारीरिक रूप से अनदेखा हमला भी है जिसकी भाषा या तो करने वाला समझता है या फिर शिकार किशोरी या युवती। सामाजिक स्वीकृति के कारण इसे पहचान पाना और भी कठिन हो जाता है।

अपराधी बहुत सफाई से बच निकलते हैं और फिर इस तरह की छेड़छाड़ का कोई सबूत भी तो नहीं होता। शिकायत की भी जाये तो कैसे? शिकायत लिखने वाले

तो हर बात का सबूत मांगते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर लड़की कहे कि उसने मेरी चोटी खींची हैं तो जवाब मिलेगा गलती से हाथ लग गया होगा। छेड़छाड़ में बोले गये शब्दों को बार-बार दोहराने में लड़कियों को सबके सामने एक तमाशा बनने से अच्छा चुप रह जाना ही लगता है। कितनी ही बार बसों में, सड़कों पर, घरों में, काम की जगह में, खिंचते कपड़ों, घूरती आंखों, ओछी छींटाकशी या फब्तियों का शिकार होती हैं और कुछ कर भी नहीं पाती हैं।

हमें ऐसे हालातों में फंसी और शिकार हुई लड़कियों की मदद करनी होगी। अपने आसपास हो रही ऐसी घटनाओं पर चुप्पी तोड़नी होगी। सजग रहना होगा कि ऐसी घटनाएं हों ही न।

अगर कारण खोजें तो इसके मूल में हमारे पितृसत्तात्मक समाज की उपभोगवादी सोच दिखाई देती है जहां लड़की महज एक उपभोग का साधन या माध्यम है। शादी से पहले वह इस उपभोग के लिए निर्माण की प्रक्रिया में होती है। पिता के घर में भी लड़की ऐसी तमाम बातों और तानों का शिकार होती है जिन्हें मज़ाक कहा जाता है लेकिन जो उसकी सोच की दिशा को तय करते हैं, जैसे-

- अरे कितना ही क्यों न पढ़ लिख लो, बेलनी तो रोटियां ही हैं।
- इतना चमक-धमक कर रहोगी तो लोग तो छेड़ेंगे ही।
- रात को शरीफ़ घर की लड़कियां घर के बाहर नहीं निकलतीं।
- जीजा साली के रिश्ते में कैसी शर्म, साली तो जीजा की आधी घरवाली होती है।
- देवर-भाभी का तो रिश्ता ही मज़ाक का है, इसका बुरा क्या मानना?
- अरे भाई, तुम्हारे साथ ही तो पढ़ता है। साथ-साथ पढ़ने वालों में तो हंसी-मज़ाक चलता ही रहता है उसका बुरा क्या मानना? अब इतनी छोटी-छोटी बातों के लिए भी तैयार नहीं रहोगी तो दुनिया में कैसे जिओगी?
- बेकार किसी के मुंह मत लगा करो।

ऐसी तमाम बातें मौका-बेमौका लड़कियों के कानों में पड़ती रहती हैं उन्हें बताती हुई कि उन्हें आदत होनी चाहिए ऐसी बातों को सुनने और झेलने की। वे सुनती हैं और चुप रह जाती हैं। जाने-अनजाने में हम खुद अपनी बच्चियों को चुप रहना, सहना व डरना सिखाते हैं। वे चुप रहती हैं और मज़ाक करने वाले को अपने अधिकार का बोध होता है। नतीजतन यह छोटी-मोटी छेड़छाड़ बड़े हादसों का भी रूप ले लेती है। तब भी दोष हम अपनी लड़कियों को ही देते हैं- 'पराए लड़कों से ज़्यादा हंसी मज़ाक करोगी तो ऐसा ही होगा' या 'रिश्ता भी ऐसा है कि कोई कुछ कह नहीं सकता।'

इस तरह की घटनाओं को बढ़ाने में मीडिया ने भी खासी भूमिका निभाई है। सरेआम सड़कों पर हीरोइन को छेड़ते हीरो, अश्लील गानों और दोहरे अर्थ वाले संवादों के कारण भले ही फ़िल्में बिकती हों, लेकिन उससे समाज के नौनिहालों को भयंकर रूप से गलत संदेश मिलते हैं। इनका खामियाज़ा भी राह चलती लड़कियों को भुगतना पड़ता है। फ़िल्मी दुनिया और कहानियों को सच मान लेने की आम मानसिकता के कारण ही कोई हादसे की शिकार लड़की की मदद के लिए भी सामने नहीं आता। सबसे पहले हमें ऐसे तमाम फ़िल्मों, विज्ञापनों पर रोक लगानी चाहिए जो इस तरह की घटनाओं को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बढ़ावा देती हैं।

लड़कियां किन्हीं सामाजिक, पारिवारिक कारणों से ऐसी हरकतों का विरोध नहीं करतीं। किसी को उसके बारे में नहीं बतातीं। चुपचाप सहन कर लेती हैं। उनकी इस सहनशीलता के कारण ही इस तरह के अपराध लगातार बढ़ रहे हैं।

एक और मुख्य कारण है हमारा कानून। 'ईव-टीज़िंग' शब्द वास्तव में इस अपराध को बहुत हल्का कर देता है। अपर्याप्त कानून और इसे लागू करने के अपर्याप्त साधनों या व्यवस्थाओं के कारण उनका फायदा लड़कियां या औरतें नहीं उठा पा रही हैं। हमारा पुलिस तंत्र इतना जागरुक और संवेदनशील नहीं है कि वे ऐसे मामलों को गम्भीरता से ले और उस पर सख्ती से कार्यवाही करे।

हमें यह बात समझ लेनी होगी कि अन्याय और अत्याचार सहन करने से बढ़ते हैं कम नहीं होते। अगर हम सचमुच ऐसे अपराधों को कम करना चाहते हैं तो हमें ऐसे अपराधों पर चुप्पी को तोड़ना होगा।

किसी भी रिश्ते की सीमा इतनी बड़ी नहीं हो सकती कि वह किसी औरत के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाए। अगर हमारी बेटी हमसे कहती है कि मेरा साथ फलां व्यक्ति ऐसा कर रहा है तो हम मानें कि यह उसकी गलती नहीं बल्कि उस आदमी की बदमाशी है। हम अपनी बेटियों पर बंदिश लगाने की बजाय ऐसे रिश्तों और पुरुषों को रोकना सीखें।

हमें अपने भीतर से सामाजिक डर को भी निकालना होगा। अपनी बेटियों को आज़ादी देनी होगी। उनमें इतना आत्मविश्वास पैदा करना होगा कि अगर उनके साथ ऐसी कोई हरक़त हो तो वे खुद ही उसे निपटा सकें। लड़की के साथ हुई छेड़छाड़ को हम अपनी इज़्ज़त का मसला न बनायें वरन् उसे एक सामाजिक बुराई के रूप में देखें और दूर करने की कोशिश करें।

लड़कियों का सज-धज कर निकलना, उनका ऐसे चलना, वैसे चलना, इतने समय घर से निकलना, इतने समय नहीं ऐसी तमाम बंदिशों को तोड़ना होगा। हमें यह समझ लेना होगा आज का समय अपनी बेटियों को घर की चारदीवारी में बंद करने का नहीं है। अगर हम चाहते हैं कि हमारी बेटियां पढ़ लिखकर आगे बढ़ें तो हमें उन्हें एक सुरक्षित माहौल देना होगा।

ऐसा नहीं कि इन घटनाओं पर रोक नहीं लगाई जा सकती। घर और रिश्तों के दायरों से बाहर आने के साथ ही इन घटनाओं पर चुप्पी टूटी है। तमाम खतरों और अपमान के बावजूद लड़कियों ने इस तरह की घटनाओं को समाज के सामने रखा है। *'ईव-टीज़िंग प्रिवेंशन एक्ट'* धारा 394 और धारा 509 जैसे कानून भी शामिल हुए हैं। लेकिन यही काफी नहीं है। जब तक हम सामाजिक तौर पर ऐसी हरकतों को नहीं नकारते तक तक हमारी लड़कियां सुरक्षित नहीं रह सकतीं। हमें अपने पुलिस तंत्र को भी संवेदनशील बनाना होगा जिससे वो भी यह समझें कि लड़कियां किसी मज़ाक या छेड़छाड़ का साधन नहीं है और पुलिस थाने में आने वाले हर ऐसे केस को संगीन अपराध का दर्जा दें। जब तक हम इस तरह की हिंसा को छोटी-मोटी बात कहकर टालते रहेंगे तब तक हमारी बेटियां इसी तरह सरेआम सड़कों पर छेड़छाड़ का शिकार होती रहेंगी।

नारी शरीर पर अत्याचार

आओ बहनों एक हो जायें, इस ज़ुल्म का हम प्रतिकार करेंगे
नारी शरीर पर अत्याचार नहीं सहेंगे, नहीं सहेंगे

नारी शरीर नारी का हक़, ग़ैरों का वो अधिकार नहीं,
आओ मिलकर दिखलायेंगे, नारी बाज़ारू चीज़ नहीं,
मानवता पर अब ये कलंक हम नहीं सहेंगे, नहीं सहेंगे
नारी शरीर पर...

नारी तो अब न अबला है, बुद्धिमती हम सबला हैं
नारी के मान पर बल का अब अहंकार हम नहीं सहेंगे
नारी शरीर पर...

अब तक स्त्री के तन मन को, बुद्धि शक्ति,
प्रतिभाओं को कुचल दिया पर अब इनके अपमान
को हम नहीं सहेंगे
नारी शरीर पर...

हम मानव हैं हम दासी नहीं, हम मानव हैं हम देवी नहीं
अपनी मानवता का अपमान अब नहीं सहेंगे, नहीं सहेंगे
नारी शरीर पर...

-ज्योति महापसेकर व छाया राजे

महिलाओं के लिए सुरक्षित दिल्ली अभियान

महिला व बाल विकास विभाग, दिल्ली सरकार, यूनिफ़ेम, जागोरी व यूएन हैबिटेट का संयुक्त प्रयास

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा व बढ़ती असुरक्षा को मद्देनज़र रखते हुए *महिला व बाल विकास तथा स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री* प्रोफेसर किरण वालिया ने *यूनिफ़ेम, जागोरी* व *यूएन हैबिटेट* के साथ मिल कर महिलाओं के लिए *सुरक्षित दिल्ली अभियान* की शुरूआत की है। यह कार्यक्रम 25 नवम्बर, जो **महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा का अंतर्राष्ट्रीय दिवस है** और **महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के अंतर्राष्ट्रीय पखवाड़े** की शुरूआत, को दिल्ली के सेंट्रल पार्क, कनॉट प्लेस में आयोजित किया गया था। कार्यक्रम की शुरूआत प्रोफेसर किरण वालिया व *यूनिफ़ेम* की क्षेत्रीय निदेशक ऐनी स्टेन हैमर ने दीप जलाकर की।

अपने वक्तव्य में ऐनी स्टेन हैमर ने इस अगुवाई के बारे मे बताते हुए कहा कि औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा सिर्फ़ महिलाओं का मुद्दा नहीं बल्कि एक मानव अधिकार का विषय है। उनका विचार है कि सार्वजनिक क्षेत्रों में औरतें ज़्यादा असुरक्षित हैं तथा हिंसा मुक्त जीवन के लिए इस पहल में पुरुषों की भागीदारी सुनिश्चित करना ज़रूरी है जिससे वे महिला मुद्दों के प्रति ज़िम्मेदार व संवेदनशील बनें। अंत में उन्होंने कहा कि "एक साथ मिलकर हम यह कर सकते हैं और ज़रूर करेंगे।"

जागोरी की ओर से कल्पना विश्वनाथ में इस अगुवाई को आगे ले जाने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया। *जागोरी* के *सुरक्षित दिल्ली अभियान* के पिछले पांच वर्षों के काम की जानकारी देते हुए उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि इस मुद्दे पर गंभीरता से काम करने की आवश्यकता है जिससे यह महज "ईव टीज़िंग" तक सीमित न होकर रह जाए। इस महत्वपूर्ण काम से जुड़े सभी संगठनों को उन्होंने *जागोरी* की ओर से पूर्ण सहयोग प्रदान करने का आश्वासन भी दिया। अपनी बात को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा कि "हमारा ख्वाब है कि औरतों के प्रति हिंसा जड़ से मिट जाए जिससे वे बिना डरे और आंतकित हुए किसी भी जगह आज़ादी से आ-जा सकें।"

इसके बाद मदनपुर खादर की युवा कार्यकर्त्ता रमा ने शहर से जुड़े अपने अनुभव बांटे तथा बताया कि किस प्रकार *जागोरी* के सहयोग से खादर पुनर्वास क्षेत्र में सुरक्षा जांच की जा रही है जिससे महिलाओं की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके। अपनी जांच के परिणामों को नगर पालिका व पुलिस के सामने पेश करने की बात भी उन्होंने सबके साथ बांटी।

आज़ाद फाउंडेशन से जुड़ी टैक्सी चालक शन्नो बेगम

समाचार सार

सुरक्षित दिल्ली अभियान

जनसत्ता संवाददाता 26/11/09

नई दिल्ली, 25 नवंबर। राजधानी में सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं के खिलाफ हिंसा रोकने और उनकी सुरक्षा की कमी पर ध्यान देने के लिए यूनिफेम, जागोरी और यूएन हैबिटेट के सहयोग से दिल्ली सरकार ने बुधवार को 'महिलाओं के लिए सुरक्षित दिल्ली' अभियान शुरू किया। नई दिल्ली स्थित सेंट्रल पार्क में हुए एक समारोह में यह पहल की गई।

महिलाओं के लिए सुरक्षित दिल्ली अभियान के जरिए सरकार का मकसद एक ऐसे भारत के निर्माण की दिशा में काम करना है जहां महिलाएं व कमजोर समूह सुरक्षित रहें और सुरक्षित माहौल में वे आ जा सकें। इस मौके पर दिल्ली सरकार की स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री प्रो. किरण वालिया ने कहा कि समग्र तरीके से भारत में महिलाओं की सुरक्षा पर ध्यान देने के लिए दिल्ली एक मॉडल का निर्माण करेगी। दिल्ली सरकार एक योजना बना रही है, जो बहु-युक्तिसंगत होगी।

ने सभी के साथ एक पुरुष केंद्रित व्यवसाय में अपनी जगह बनाने के अनुभव बांटे। उन्होंने महिलाओं से गुज़ारिश की कि वे अपने निर्णय स्वयं लेने में सक्षम बनें।

प्रोफेसर किरण वालिया ने संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र, **'से नो टु वॉयलेंस'** पर हस्ताक्षर किए जिसमें दर्ज है कि महिलाओं के विरुद्ध हिंसा बर्दाश्त नहीं की जायेगी। उन्होंने सार्वजनिक जगहों पर औरतों की असुरक्षा की बात करते हुए *जागोरी* के अभियान को सराहा। सुरक्षा जांच की समीक्षा करते हुए उन्होंने उदाहरण के तौर पर बताया कि शहर में महिला शौचालयों की कमी है और जहां ये सुविधा मौजूद है वहां यौन हिंसा के डर से औरतें इनका उपयोग करने से कतराती हैं। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि ऐसे कार्यक्रम सार्वजनिक स्थलों पर आयोजित किए जाने चाहिए। उन्होंने पुरुषों से भी गुज़ारिश की कि वे खामोश न रहें बल्कि आगे आकर इस मुद्दे को सहयोग दें। किरण वालिया ने बसों में होने वाली छेड़छाड़ की बात करते हुए बताया कि सरकार बसों में कैमरे लगाने का विचार कर रही है जिससे अभियुक्तों को सज़ा दी जा सके। अपनी बात को समापन करते हुए उन्होंने कहा कि "दो लोग दो हज़ार को बदलने की क्षमता रखते हैं।"

महिला व बाल विकास विभाग के निदेशक राजीव काले ने *जागोरी* व *यूनिफ़ेम* के साथ भागीदारी पर खुशी जताई तथा सार्वजनिक स्थलों पर हिंसा के लिए कानून बनाने की ज़रूरत पर बात की। उन्होंने पुलिस व नगर पालिका के साथ मिलकर इस विषय पर काम करने में अपनी सहमति दिखाई तथा बेस लाईन सर्वेक्षण की मदद से हस्तक्षेप नीतियां बनाने का अपना संकल्प दोहराया।

कार्यक्रम के अंत में एक सांस्कृतिक कार्यक्रम किया गया जिसमें नुक्कड़ नाटक, कविता पाठ व गीत प्रस्तुत किये गए। शाम का समापन एक मोमबत्ती चौकसी से किया गया जिसमें सभी मौजूद सदस्यों ने महिलाओं व लड़कियों के लिए एक हिंसा मुक्त दिल्ली बनाने की प्रतिबद्धता की शपथ ली।

— जुही जैन

'सुरक्षित दिल्ली पहल' से महफूज रहेंगी महिलाएं

अ० उ० 26/11/09

योजना

विभिन्न संगठनों के सहयोग से दिल्ली सरकार ने बनाई योजना

महिलाओं को और कमजोर वर्ग को सुरक्षा देने की कवायद

नई दिल्ली। दिल्ली में महिलाओं के खिलाफ हिंसा और उनकी सुरक्षा का जिम्मा अब 'असुरक्षित दिल्ली पहल' पर होगा। राजधानी में सार्वजनिक स्थलों पर महिलाओं की सुरक्षा के लिए यूनिफेम (यूएनआईएफईएम), जागोरी और यूएन हैबिटेट के सहयोग से दिल्ली के सहयोग से दिल्ली सरकार ने सुरक्षित दिल्ली पहल (सेफ देल्ही फार विमेन इनिशिएटिव) योजना लांच की है। दिल्ली स्थित सेंट्रल पार्क में आयोजित एक समारोह में बुधवार को यह योजना लांच की गई।

महिलाओं के लिए सुरक्षित दिल्ली पहल के जरिये दिल्ली सरकार का उद्देश्य एक ऐसे शहर के निर्माण की दिशा में कार्य करना है, जहां महिलाएं एवं कमजोर समूह सुरक्षित रहें और सुरक्षित माहौल में कहीं भी आ-जा सकें। महिला एवं बाल विकास और स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्री डॉ. किरण वालिया ने बताया कि शहरों में एक समग्र तरीके से महिलाओं की सुरक्षा पर ध्यान देने के लिए एक मॉडल का निर्माण किया जाएगा। उन्होंने बताया कि दिल्ली सरकार एक योजना बना रही है, जिसके अंतर्गत स्टेकहोल्डर्स के रूप में पुलिस, शहरी योजनाकार, सेवा प्रदाता परिवहन पदाधिकारी सामुदायिक समूह और सामाजिक संगठनों के पदाधिकारी होंगे। पुलिस को रोकथाम संबंधी उपायों और केस रिपोर्ट होने पर तुरंत एवं दक्षतापूर्ण ढंग से कदम उठाने के दोनों कार्य करने होंगे। शहरी योजना तैयार करने और डिजाइन में जेंडर को एक मूल तत्व के रूप में शामिल किया जाएगा ताकि शहरों को अधिक सम्मिलित स्वरूप प्रदान किया जा सके।

देश-विदेश में
महिला सुरक्षा सेमिनार

प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-मॉट्रियल 2002

विमेन इन सिटीज़ प्रोग्राम ऑफ़ द सिटी ऑफ़ मॉट्रियल ने 2002 में महिला व सुरक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया था जिसमें देश-विदेश के 250 सहभागी शामिल हुए थे। इस सेमिनार का मुख्य लक्ष्य था- विभिन्न परिवारों, स्त्री-पुरुष, समुदाय व सरकारी संस्थानों, नागरिक व स्थानीय प्रशासन व पुलिस सेवाओं, ग्रामीण व शहरी अध्ययन व व्यवहार तथा उत्तर-दक्षिण के बीच साझेदारी विकसित करना। इस सेमिनार का यह भी मकसद था कि मौजूदा जानकारियों व व्यवहारों की समीक्षा करके महिलाओं व समुदायों की सक्रिय कार्यवाई के लिए रणनीतियां व नज़रिए तय किए जाएं जिससे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संगठन एकजुट होकर काम कर सकें। चर्चाओं के दौरान नागरिक सशक्तता व सहभागिता के मुद्दों पर भी ज़ोर दिया गया जिससे सार्वजनिक स्थलों की सुरक्षा बढ़ाने की दिशा में काम किया जा सके। सेमिनार में यह भी तय किया गया कि स्थानीय अधिकारी व कार्यवाही तथा स्थानीय व अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों व व्यवहार शैलियों को किस प्रकार इस मुद्दे को सम्बोधित करने के लिए काम में लाया जा सकता है।

द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सेमिनार-बोगोटा 2004

सार्वजनिक स्थलों तथा घर के भीतर औरतों पर होने वाली हिंसा के बीच संबंध को उजागर करने के लिए स्थानीय, क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क व संगठनों ने साथ मिलकर द्वितीय महिला व सुरक्षा सेमिनार का आयोजन बोगोटा में किया गया। इस सेमिनार में शामिल सभी तीन सौ सहभागी स्थानीय सरकारों, शोध व अकादमिक संगठनों, नागरिक समाज संस्थाओं व अंतर्राष्ट्रीय समूहों से आये थे। इस सेमिनार में चर्चित मुद्दे थे-महिलाओं व लड़कियों को सहभागिता, मोबिलाइज़ेशन व सशक्तता के लिए रणनीतियों का विकास तथा सार्वजनिक, निजी व प्रतिकात्मक स्थलों पर हिंसा व असुरक्षा का स्वरूप। स्थानीय अनुभवों को समझने के लिए शहर के विभिन्न हिस्सों में फील्ड ट्रिप आयोजित किये गये। इस सेमिनार का एक मुख्य आकर्षक था *महिला सुरक्षा एवार्ड* के अंतर्राष्ट्रीय विजेताओं का सम्मान करना।

तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन-नई दिल्ली 2010

सार्वजनिक स्थलों पर औरतों की बढ़ती असुरक्षा तथा लैंगिक असमानताओं के कारण महिलाएं अपने नागरिक अधिकारों को पूरी तरह उपयोग करने में असक्षम हैं। इस सम्मेलन को आयोजित करने के पीछे उद्देश्य है शहर को सुरक्षित बनाना और इसमें औरतों की प्रमुख भागीदारी स्थापित करना। हमारा मानना है कि महिलाओं के लिए सुरक्षित शहर अन्य सभी के लिए भी पूर्णतः महफूज होंगे। यह सम्मेलन *जागोरी, विमेन इन सिटीज़ इंटरनेशनल, यूनिफ़ेम, यूएन हैबिटेट* का संयुक्त प्रयास है। सम्मेलन में महिला सुरक्षा मुद्दे से जुड़े नेटवर्क, संगठन, क्षेत्रीय, व राष्ट्रीय सरकारें, अंतर्राष्ट्रीय संगठन, ज़मीनी स्तर पर कार्यरत समूह, अपराध संरक्षण संगठन, शोधकर्त्ता व नगर पालिका संगठन शामिल होंगे। इस सम्मेलन के माध्यम से अच्छे प्रशासन, महिलाओं की मूल सुविधाओं तक पहुंच, महानगरों में महिलाएं, सुरक्षित शहरों के गठन के लिए अंतर्राष्ट्रीय प्रयास आदि विषयों पर चर्चाएं होंगी। इस सम्मेलन का आयोजन नवम्बर 2010 में करने का प्रस्ताव है।

अन्य जानकारी के लिए जागोरी से सम्पर्क करें
safedelhi@jagori.org

यौन उत्पीड़न कानून

यौन उत्पीड़न होता है...

- सीटी बजाना।
- घूरते रहना।
- अनचाहा चुम्बन, गले लगाना या छूना (दूसरे व्यक्ति के शरीर से छू कर गुज़रना)।
- किसी की प्राइवेसी और निजी दायरे में घुसपैठ करना, औरत को असहज व परेशान करना (जैसे, उसके बहुत नज़दीक खड़े हो जाना या उसकी गर्दन पर सांसे छोड़ना)।
- भद्दी फब्तियां कसना या किसी के पहनावे अथवा यौनिकता पर टिप्पणियां करना, अश्लील टेलीफोन कॉल या अश्लील संदेश भेजना (ई-मेल, पत्र, एसएमएस या एमएमएस आदि।
- अश्लील तोहफे देना।
- पीछा करना (किसी पर लगातार नज़र रखना या उसके पीछे चलते जाना)।
- किसी को उसकी इच्छा के विरुद्ध अश्लील फ़िल्में, तस्वीरें दिखाना अथवा कविताएं, कहानियां आदि सुनाना।
- किसी को अपमानजनक तस्वीरें दिखाना, लतीफे सुनाना और कार्टून दिखाना जिसमें प्रायः महिलाओं को लज्जित किया जाता है।
- यौन सेवाओं के लिए फुसलाना, रिझाना या मजबूर करना।

लड़कियों के लिए नुस्ख़े/सलाह

- उत्पीड़न को पहचानना सीखें। अगर किसी चीज़/व्यवहार से आपको शर्मिंदगी या अपमान महसूस होता है तो वह आपका उत्पीड़न है। सवाल इस बात का नहीं है कि दूसरे व्यक्ति का इरादा क्या था। अहम बात यह

चित्र: प्रिया कुरियन

है कि उसकी हरकतों से आपको कैसा महसूस होता है। अगर आपको उत्पीड़न का अहसास हो रहा तो आपको विरोध करने का हक़ है।

- ज़ोर से और साफ-साफ 'नहीं' कहें। ऐसी स्थितियों के लिए कोई जुमला तैयार रखिए (जैसे, ये क्या हरकत है- बदतमीज़ी मत करो!) जब तक आप इस बात को स्वाभाविक रूप से कहने की आदतें न डाल लें तब तक इसकी अलग से प्रैक्टिस करती रहें।
- आत्मविश्वास पैदा कीजिए। जिनसे आपको किसी भी तरह का खतरा दिखाई देता है उनकी आंखों में आंखें डालकर देखिए और बोलना पड़े तो साफ और स्पष्ट जवाब दीजिए। यह बात जता दीजिए की आप अपनी स्थिति के बारे में पूरी तरह से सचेत हैं और आपको इस जगह होने का पूरा अधिकार है।
- दोस्त बनाइए। अलग-थलग पड़ने पर खतरा बढ़ जाता है। अगर आप मदद मांगें तो आमतौर पर लोग मदद के लिए आगे आ जाते हैं। इसी तरह अगर आपके सामने किसी का उत्पीड़न हो रहा है तो उसे रोकने के लिए भी तैयार रहिए।

- अगर उत्पीड़न जारी रहता है तो उस घटना के बारे में संबंधित लोगों को जानकारी दें और उचित कार्यवाही के लिए शिकायत दर्ज कराएं। यौन उत्पीड़न एक अपराध है इसे नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए। इसे प्रशासन की जानकारी में लाना और नियमों के गंभीर उल्लंघन के रूप में देखना बहुत ज़रूरी है।

6. ऐसे लड़कों का सम्मान कीजिए जो आपको सम्मान देते हैं। हर लड़का उत्पीड़क नहीं होता। केवल पृष्ठभूमि या पहनावे या भाषा के आधार पर लड़कों दुत्कारते रहना या उनसे बचना इस बात का संकेत है कि आप खुद पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। इस तरह का व्यवहार उन लड़कों की तरफ से जवाबी कार्यवाही की वजह भी बन सकता है जिन्हें आप नापसंद करती हैं।

ऐसा न करें...

1. अपनी कमज़ोरी का प्रचार न करें। किसी सार्वजनिक स्थान पर नर्वस दिखाई न दें, सिर झुकाकर न चलें और अगर कोई आप से वाजिब सवाल पूछता है तो उसका जवाब ज़रूर दें।
2. मदद मांगने में न हिचकिचाएं। ज़्यादातर उत्पीड़कों की हिम्मत तोड़ने के लिए इतना ही काफ़ी रहता है कि आप मदद के लिए ज़ोर से आवाज़ लगाएं। बल्कि अगर आप मदद न मांगें तो कई बार लोगों को अंदाज़ा भी नहीं होता कि आपको मदद की ज़रूरत है।

सार्वजनिक स्थानों पर यौन उत्पीड़न कानून
(गैर-संज्ञेय, जमानतीय/जमानत योग्य)

आईपीसी की धारा 294 : अश्लील हरकतें और गाने

अगर कोई व्यक्ति औरों को परेशान करने के लिए –
- सार्वजनिक स्थान पर कोई **अश्लील हरकत** करता है, या
- सार्वजनिक स्थान पर अथवा उसके आसपास **अश्लील गीत, गाने या शब्द गाता या बोलता** है तो उसे **कैद** की सज़ा दी जा सकती है। यह सज़ा **तीन महीने** की हो सकती है या उससे **जुर्माना** वसूल किया जा सकता है या दोनों सज़ाएं दी जा सकती है।

आईपीसी की धारा 354 : महिला के सम्मान को ठेस पहुंचाना

यदि कोई व्यक्ति किसी महिला की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाने के लिए या यह जानते हुए **महिला पर हमला** करता है या **बल प्रयोग** करता है कि इससे उसके **सम्मान को ठेस पहुंचेगी** तो उसे **दो साल** तक की कैद या **जुर्माना** या **दोनों सज़ाएं** दी जा सकती हैं।

आईपीसी की धारा 509 : किसी महिला के सम्मान को ठेस पहुंचाने वाले शब्द, भंगिमाएं या हरकतें

यदि कोई व्यक्ति किसी महिला के सम्मान को ठेस पहुंचाने के लिए और उसे सुनाते हुए कोई **शब्द** कहता है, या किसी तरह की **आवाज़ें** निकालता है या **भंगिमाएं** बनाता है या कोई **वस्तु दिखाता** है या महिला की **प्राइवेसी का अतिक्रमण** करता है तो उसे अधिकतम **एक साल की साधारण कैद** या **जुर्माना** या **दोनों सज़ाएं** दी जा सकती हैं।

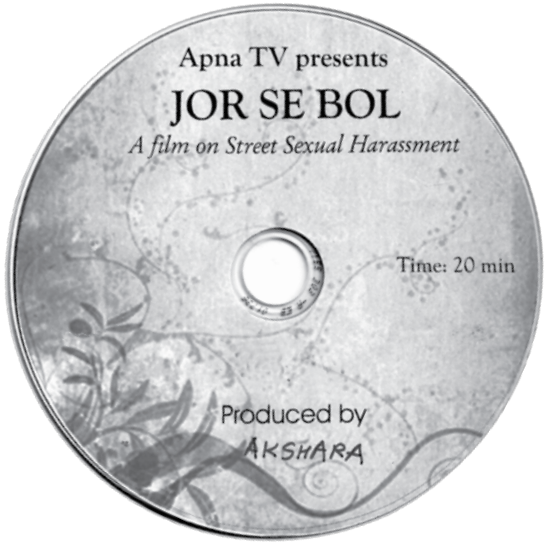

ज़ोर से बोल
छेड़ख़ानी के ख़िलाफ़

प्रस्तुति : अपना टीवी

निर्माता : अक्षरा, महिला संदर्भ केन्द्र, मुंबई

अवधि : 20 मिनट

भाषा : हिन्दी

जैसे कि अपने नाम से ही ज़ाहिर है यह फ़िल्म लड़कियों व महिलाओं द्वारा सार्वजनिक जगहों पर झेली जाने वाली छेड़खानी के अनुभवों पर रोशनी डालती है। बीस मिनट में फ़िल्म बखूबी दर्शाती है कि किस तरह मर्दानगी के मिथकों से प्रभावित नवयुवक सार्वजनिक जगहों जैसे कॉलेज या पार्क में आती-जाती लड़कियों को छेड़ते हैं और इस व्यवहार का लड़कियों के व्यक्तित्व, उनकी आज़ादी और मानसिकता पर क्या प्रभाव पड़ता है।

फ़िल्म इस सोच को तोड़ने में सफल रही है कि छेड़खानी एक मज़ाक का या हलका-फुलका नॉर्मल मामला नहीं वरन् एक संगीन अपराध है और हर शख्स को इसका पुरज़ोर विरोध करना चाहिए। फ़िल्म की शुरूआत से लेकर इसके समापन तक इसमें औरतों के ख़िलाफ़ एक ऊर्जात्मक जंग दिखाई देती है।

फ़िल्म की शुरूआत होती है अखबार में छपी 'यौनिक हिंसा' की खबरों से जिसके माध्यम से यह दिखाया गया है कि विभिन्न तरह की यौनिक हिंसा का महिलाओं पर क्या असर पड़ता है। फ़िल्म में दिनों-दिन बढ़ती इस हिंसा के प्रति चिंता भी व्यक्त की गई है।

इस वृत्तचित्र में कुछ लड़कों व लड़कियों से बातचीत के द्वारा यह कोशिश की गई है कि छेड़खानी जैसी हरकतों के पीछे पुरुषों की मानसिकता, उनका सामाजीकरण व लड़कियों के प्रति उनकी धारणाओं को समझा जा सके। ज़्यादातर लड़कों से जब यह पूछा गया कि 'वे छेड़खानी क्यों करते हैं' या 'ऐसी हरकतों से उन्हें क्या मिलता है' तो जवाब था कि यह मर्दानगी दर्शाने का एक ज़रिया है। लड़कियों को छेड़खानी से खुशी होती है। छेड़खानी से लड़कियों को मर्द होने का एहसास होता है ताकि वे लड़कों के पीछे आ सकें। छेड़खानी की एक और वज़ह बताते हुए कुछ

लड़कों ने बताया कि वे उन्हीं लड़कियों को छेड़ते हैं जो 'छोटे' व 'भड़काऊ' कपड़े पहनती हैं।

फ़िल्म की यह बहुत बड़ी खूबी है कि इसने आम लोगों से बातचीत और उनके विचारों के माध्यम से पुरुष मानसिकता के मिथकों को चुनौती दी गई है। जहां एक ओर लड़कों की सोच प्रस्तुत की गई है वहीं लड़कियों से की गई बातचीत इस सोच के मिथकों को सशक्त तरीके से तोड़ती नज़र आती है। लड़कियों ने खुले तौर पर ज़ाहिर किया कि लड़कों द्वारा की जा रही छींटाकशी और छेड़खानी से उन्हें नफ़रत है, ऐसी हरकतें उन्हें लड़कों से और दूर कर देती हैं। वे ऐसे लड़कों का सम्मान नहीं कर सकतीं जो इस तरह का अश्लील बर्ताव करते हैं।

इसके अलावा लड़कियों को यह भी डर रहता है कि यदि वे छेड़खानी का विरोध करती हैं तो उन्हें कई तरह की अन्य परेशानियों का भी सामना करना पड़ सकता है। उन्हें डर रहता है कि परिवार उन्हें ऐसी हिंसाओं से दूर रखने के लिए उनकी पढ़ाई, आने-जाने पर रोक-टोक या घर से निकलने पर पांबदी न लगा दें। यही वज़ह है कि लड़कियां अपने साथ होने वाली हिंसा को ज़्यादातर नज़रअन्दाज़ करती हैं या इस बारे में परिवार में बात नहीं करतीं।

फ़िल्म के अंत में लड़कियां समाज व परिवार से यह गुज़ारिश करती नज़र आती हैं कि परिवार अपनी बेटियों पर विश्वास करें, उनकी परेशानियों को समझें, उन पर भरोसा करें व उनको इस तरह की यौनिक हिंसा का आत्मविश्वास के साथ लड़ने व सामना करने की प्रेरणा दें।

फ़िल्म का स्पष्ट और मुखर संदेश है कि लड़कियों व औरतों के साथ छींटाकशी, यौनिक छेड़छाड़ व हिंसा का जवाब चुप्पी में नहीं है वरन् समाज के सामने लाकर सामना करने में है।

—सीमा श्रीवास्तव

आओ मिलकर शहरों को सुरक्षित बनाएं औरतों और बच्चों पर होने वाली हिंसा मिटाएं

इज़ दिस ऑवर सिटी:
मैपिंग सेफ़्टी फ़ॉर विमेन इन देहली

प्रकाशक : जागोरी
भाषा : अंग्रेज़ी
पृष्ठ : 47
मूल्य : 300/-

राष्ट्रमंडल खेलों की तैयारी में जुटी दिल्ली 2010 तक शायद एक 'ग्लोबलाइज़्ड सिटी' बन जाए पर इस शहर के कुछ मूल कारकों में परिवर्तन आएगा इसका विश्वास करना मुश्किल हो रहा है। पूरे भारतवर्ष के तमाम बड़े शहरों में दिल्ली को भारत का 'सबसे असुरक्षित शहर' होने का दर्जा हासिल है। एनसीआरबी 2005 के आंकड़ों के अनुसार देश भर में रिपोर्ट किए गये बलात्कार के एक तिहाई मामले तथा यौन हिंसा के एक चौथाई अपराध दिल्ली में हुए थे। हिंसा के इन्हीं आंकड़ों को देखते हुए *जागोरी, महिला प्रशिक्षण संस्था ने सुरक्षित दिल्ली अभियान* शुरू किया था।

यह अभियान इस सोच के ईदगिर्द बुना गया है कि सार्वजनिक स्थलों की सुरक्षा उस स्थल का उपयोग करने वालों की सक्रिय भागीदारी पर निर्भर करती है। इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं को "कमज़ोर" न मानकर उन्हें सशक्त बनाने की दिशा में काम किया जाए। हिंसा से निटपने का आत्मविश्वास महिलाओं के लिए बेहद ज़रूरी है और इसमें पुलिस व कानून कार्यान्वयन संस्थानों को भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी होगी। इस शहर के सभी नागरिकों का भी यह दायित्व है कि वे शहर को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाने में सहायता करें।

सुरक्षित दिल्ली अभियान के मुख्य तीन उद्देश्य हैं:

1. सार्वजनिक स्थलों में हिंसा व उत्पीड़न के मुद्दे को उजागर करके इसे एक 'गंभीर अपराध' का दर्जा दिलाना।
2. सुरक्षा के अभाव व हिंसा को महिला संबंधी मुद्दा न मानते हुए इसे शहरीकरण, शहर की बदलती संस्कृति का मानक तथा महिला अधिकारों के हनन के रूप में रेखांकित करना।
3. सार्वजनिक सुरक्षा के मुद्दे को विभिन्न नागरिक समूहों की मदद से पहचानना व सम्बोधित करना।

इस अभियान का एक अहम हिस्सा सेफ़्टी ऑडिट या सुरक्षा जांच है। दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों, बाज़ारों, रिहाइशी कॉलोनियों में की गई इस सुरक्षा जांच में उन कारणों को चिन्हित करने की कोशिश की गई है जो उस इलाकों को असुरक्षित या सुरक्षित बनाने में मदद करते हैं।

सुरक्षा जांच की यह प्रक्रिया सहभागी और आसान है जिसमें महिलाओं का एक समूह एक इलाके में घूमकर वहां मौजूद महिलाओं के साथ बातचीत करता है। अधिकांश सुरक्षा जांच शाम के समय की जाती हैं और इसमें तीन चार घंटे लगते हैं। दिल्ली में ये जांच बीस इलाकों- साउथ

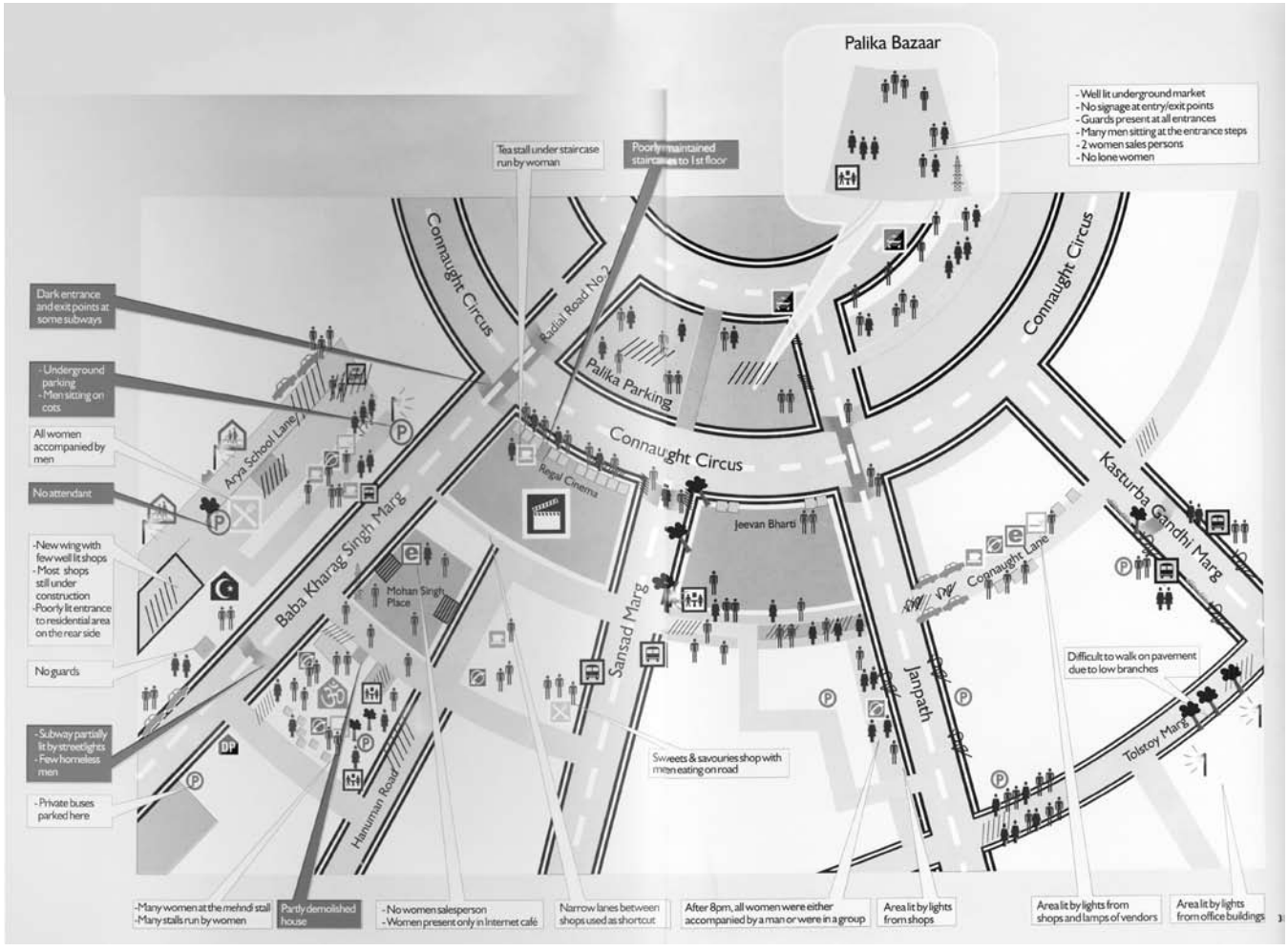

इण्डिया गेट क्षेत्र में की गई सुरक्षा जांच का नक्शा

एक्टेंशन-1, साकेत, सरिता विहार, बसंत कुंज, मयूर विहार, पश्चिम विहार, पटपड़गंज, पश्चिम पुरी, निज़ामुद्दीन, दिल्ली विश्वविद्यालय, कनॉट प्लेस, नेहरू प्लेस, सुंदर नगरी, कल्याणपुरी, मदनपुर खादर, बवाना, नई दिल्ली स्टेशन, इंडिया गेट, पीवीआर कॉम्प्लेक्स, व मायापुरी फ़ेज़-1 में की गई।

इन सुरक्षा जांचों में मुख्य रूप से औरतों की असुरक्षा के लिए ज़िम्मेदार कारण रोशनी की अभाव, उजाड़ व अधियारे बस स्टॉप, स्ट्रीट लाइटों की कमी सार्वजनिक महिला शौचालयों की दयनीय हालत, वीरान टूटी-फूटी बिल्डिंग पहचाने गये। यह भी पाया गया कि बाज़ार में ठेले-दुकानों और भीड़ की मौजूदगी पुलिस व सिक्योरिटी गार्डों का तैनात होना इलाकों को सुरक्षित बनाता है।

इज़ दिस ऑवर सिटी: मैपिंग सेफ़्टी फ़ॉर विमेन इन देहली नाम की इस रिपोर्ट में *जागोरी* के *सुरक्षित दिल्ली अभियान* तथा सुरक्षा जांच से जुड़ी जानकारी प्रस्तुत की गई है। इस दस्तावेज़ में दिल्ली के प्रमुख बीस इलाकों की सुरक्षा जांच का विश्लेषण व नक्शे भी प्रस्तुत किये गये हैं। इस रिपोर्ट की मदद से आप अपने इलाके में महिलाओं की सुरक्षा के लिए सुरक्षा जांच की शुरूआत कर सकते हैं। सुरक्षा जांच के लिए महत्वपूर्ण प्राथमिक कदमों तथा जांच की प्रक्रिया का भी इस रिपोर्ट में विस्तृत प्रस्तुतिकरण है जो आपके काम के लिए उपयोगी रहेगा। इस रिपोर्ट का शोधकर्त्ताओं, विद्यार्थियों तथा महिलाओं की सुरक्षा से सरोकार रखने वाले समूहों के लिए विशेष महत्व है।

— जुही जैन

महिला भी इंसान है

चित्रा पंचकर्ण

पिछले 20-22 वर्षों से एक गैर-सरकारी संस्था में काम कर रही हूं जो महिला सशक्तिकरण के लिए कार्यरत है। ऑफ़िस घर से दो-तीन किलोमीटर की दूरी पर है। इसलिए सुविधानुसार सुबह साईकिल रिक्शा व शाम को बस से यात्रा करती हूं। इतने वर्षों में कामकाजी महिला होने के नाते सफर के अनेक खट्टे-मीठे अनुभव हुए हैं लेकिन पिछले 4-5 महीनों में जो कुछ हुआ उसे याद करके आज भी मुझे सिहरन होती है।

एकाएक पिछले महीनों काले शीशे से जड़ी हुई एक कार मेरा पीछा करने लगी। कभी एक मोटर साईकिल सवार रिक्शा के सामने से घूरता हुआ मोटरसाईकिल घुमाता हुआ ले जाए। शुरू में मैंने सोचा कि शायद यह मेरा वहम होगा, लेकिन हर दिन जब आते हुए और जाते हुए ऐसा होने लगा तो एक असुरक्षा की भावना मुझमें घर करने लगी। दूसरी महिलाओं को सशक्तिकरण का पाठ पढ़ाने वाली स्वयं 'बेचारगी' के बोध से गस्त होने लगी। इन संदिग्ध व्यक्तियों पर बहुत गुस्सा आने लगा। अनेक तरह की गालियां मन ही मन उनके लिए निकलने लगीं। अब मैं सुबह पति से आग्रह करती कि कार्यालय जाते समय मुझे रास्ते में छोड़ दिया करें व शाम को दो-चार सहकर्मियों के साथ ही कार्यालय से बाहर निकलती।

फिर मुझमें आत्ममंथन की प्रक्रिया शुरू हुई और लगा कि ऐसे संकुचित व डरे रहने से काम नहीं चलेगा। मुझे कुछ तो करना ही होगा। मैं पास के पुलिस थाने में गई। उन्हें स्थिति से अवगत कराया व पुलिस गश्त बढ़ाने को कहा। संस्था की बहुत सी महिलाओं के साथ मिलकर महिला-सुरक्षा मुद्दे पर सड़कों पर रैली निकाली। पुलिस को भी साथ लिया। महिला-सुरक्षा मुद्दे पर जगह-जगह नुक्कड़ नाटक किये व नारे लगाए। सड़कों पर चल रही महिलाओं व पुरुषों से इस मुद्दे पर बातचीत की और यहां वहां छेड़छाड़ सम्बंधी कानूनों पर बने पोस्टर चिपकाए। रैली कामयाब रही व मुझमें भी खोया आत्मविश्वास व साहस लौट आया। आज महिला सुरक्षा का मुद्दा हमारी कार्यसूची में प्रमुखता से शामिल है। इस विषय में हर गली व नुक्कड़ में स्वस्थ चर्चा शुरू हो गई है और महिलाओं को जागरूक किया जा रहा है।

इस अनुभव के बाद मैं यह सोचने पर मजबूर हो गई कि हमारे शहरों की सड़कों पर हर दिन, हर कामकाजी महिला को कितनी असुरक्षा, अपमान व उत्पीड़न से गुज़रना पड़ता है। देश के बड़े-बड़े मेट्रो महिलाओं के लिए कितने असुरक्षित हैं इस बात का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि हर दिन अनगिनत छेड़छाड़ व यौन हिंसा की घटनाएं होती हैं व अन्य छोटे प्रांतों की तुलना में यहां जुर्म के आंकड़े बहुत अधिक हैं।

पुलिस तंत्र व आम मानस में महिला हिंसा को लेकर असंवेदनशीलता भी इन घटनाओं को बढ़ावा दे रही है। मीडिया का तो कहना ही क्या। यदि यूं कहा जाए कि मीडिया ही एक तरह से महिला-अपराधों के लिए ज़िम्मेवार है तो अतिश्योक्ति न होगी। आज चाहे प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अपने मुनाफ़े की खातिर अपनी सामाजिक जिम्मेदारी भूल गया है। औरत को हर इश्तिहार व हर विज्ञापन में एक वस्तु की तरह पेश किया जा रहा है। आज औरत बस भोग का सामान है जिसे एक चॉकलेट दिखाकर या खुशबूदार पाउडर-डियो लगाकर फुसलाया जा सकता है। देह-व्यापार के विज्ञापन भी समाचार पत्रों में छपते हैं जबकि कानून के मुताबिक किसी भी अश्लील सामग्री का प्रचार व प्रसारण निषेध है और इसका उल्लंघन

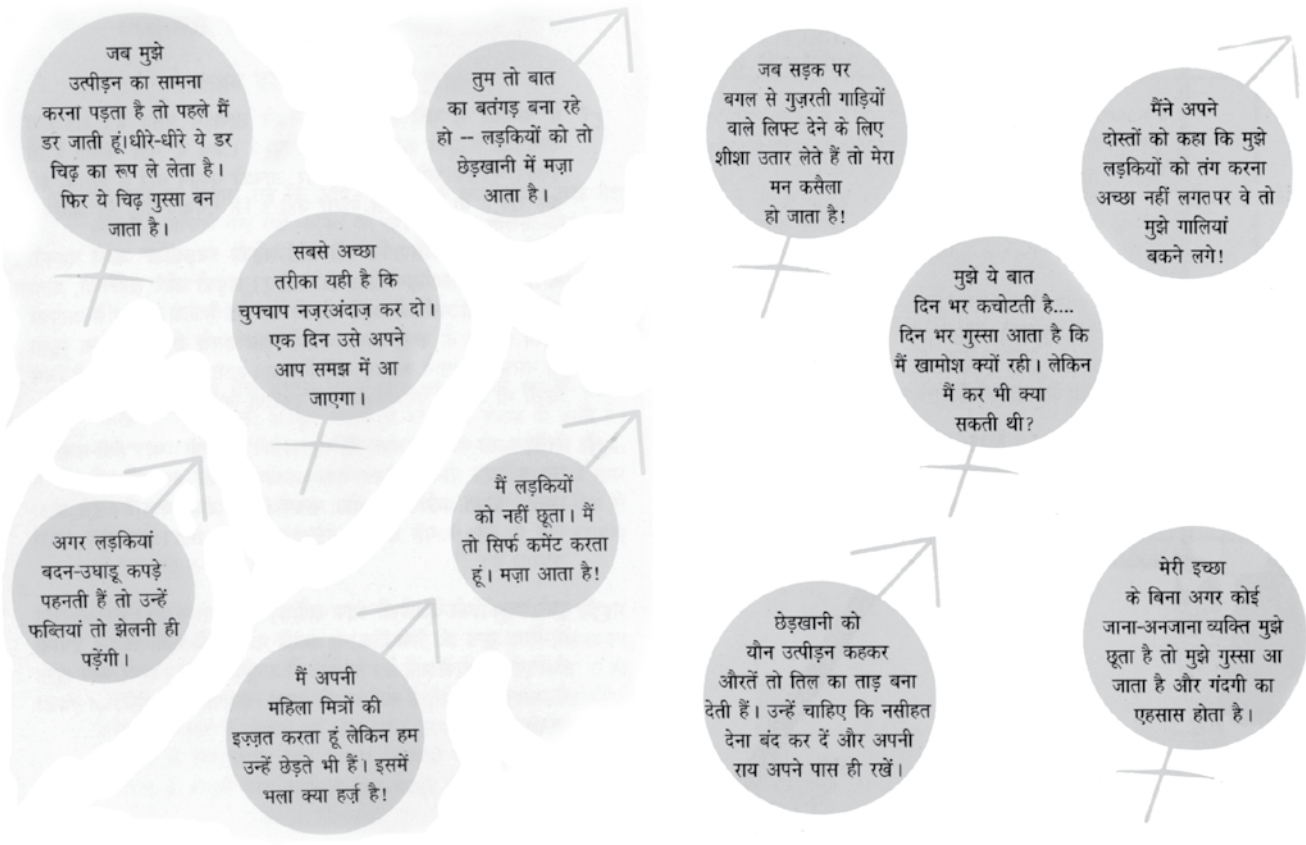

करने वालों के लिए सज़ा का प्रावधान है। इंटरनेट पर भी ऐसे विज्ञापनों की भरमार है।

ऐसे माहौल में स्त्री को कमतर समझने की मानसिकता वाले पुरुषों को घर से बाहर निकलने वाली हर महिला एक उपभोग की वस्तु ही दिखती है। वे भूल जाते हैं कि हर महिला एक इंसान है जिसकी अपनी गरिमा है। क्या सड़कों पर सुरक्षित चलना हमारा कानूनी व सामाजिक अधिकार नहीं है?

आखिर समाज की कुंद होती चेतना कब जागेगी? क्या मीडिया अपने लिए आचार-संहिता तय करेगा? क्या परिवारों की ये नैतिक ज़िम्मेदारी नहीं कि घर के पुरुषों को हर औरत का मान-सम्मान करना सिखाएं। पुलिस व हमारा कानून कब तक आंखें मूंद कर बैठा रहेगा? अपने अस्तित्व व रोज़ी-रोटी की तलाश में घर से बाहर निकलती महिलाओं को कब तक यूं ही अपमान के दंश झेलने होंगे व स्वतंत्र होने की कीमत चुकानी होगी?

जागोरी ने *सुरक्षित दिल्ली अभियान* के तहत लड़कियों व महिलाओं की सुरक्षा हेतु दो छोटी पुस्तिकाएं निकाली हैं:

- यौन उत्पीड़न-युवाओं के लिए कुछ नुस्ख़े/सुझाव
- हैल्पलाइंस

इनकी मुफ़्त प्रति के लिए जागोरी को लिखें।

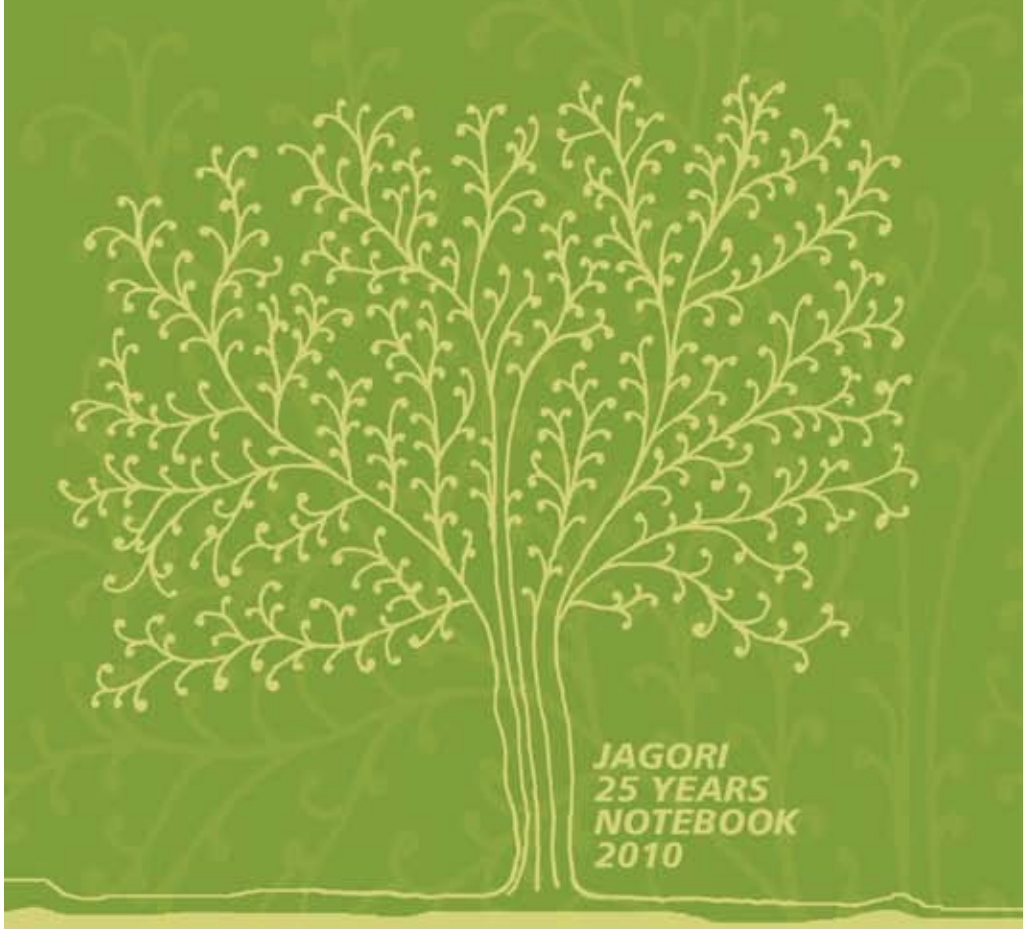

तब से अब तक

प्रिय साथियों,

हमें आप सभी से यह बांटते हर्ष हो रहा है कि जागोरी महिला आन्दोलन का अभिन्न हिस्सा बन, अपने पच्चीस साल के पड़ाव पूरी कर चुकी है। दो दशकों से भी ज़्यादा के अपने निरन्तर सफ़र के दौरान हमने औरतों के हकों की जंग और जश्न दोनों ही अनुभवों को अपनी नारीवादी राजनीति से पिरोया है। जागोरी नोटबुक इन्हीं टेढ़े मेढ़े, सरल सबल विचारों के सफ़र का आईना रही है। हमने इन नोटबुकों के ज़रिए औरतों के जीवन के बहुत से अनछुए कोनों को रंगों, चित्रों और लेखनी के मार्फ़त आपसे पहले भी बांटा है। ग्रामीण, शहरी, कस्बों से आई औरतों की बातें उनकी अपनी ही ज़बानी इन नोटबुकों की खासियत रही है और इस यात्रा में बहुत से साथियों के अनुभवों का कारवां भी साथ साथ चला है।

पच्चीस सालों के इस अमूल्य इतिहास को समेटने का प्रयास हमारी इस दफ़ा की नोटबुक का खास आकर्षण है। कई कान्फ्रेन्सों, जलसों, जुलुसों में आज भी जब हम इक्ट्ठे होती हैं तो कई साथी याद करतें हैं पुराने नोटबुक और रचनात्मक तरीकों से उठाए गए उनमें संगीन, पेचीदे और संवेदनशील मुद्दों को। हमने सोचा क्यों न हम पिछले बीस सालों (1988–2009) में प्रस्तुत नोटबुक की एक माला पिरोयें और पेश करें एक ऐसी कृति जिसमें झलक हो सालों से चले आ रहे औरतों के संघर्ष की, महक हो पुराने नोटबुक के चित्रों और रंगों की और हो जश्न का एहसास!

'2010 नोटबुक के कुछ अंश – इसमें ज़िंदादिल, उल्लास से सराबोर, दोस्तियों का जश्न मनाने वाली औरत का अक्स है जो समाज की सीमा रेखाओं से परे उड़ान भर रही है। यह उस दौर के राजनैतिक माहौल से अपने औरताना अनुभवों व संघर्षों का लेखा जोखा करती है और वक्त के तूफ़ानों के बीच डटी खड़ी है – हौसलों व संवेदनाओं को समेटकर, साहिल की खोज में!'

आर्डर करने के लिए कृपया हमें लिखें
बी–114, शिवालिक, मालवीय नगर, नई दिल्ली–110017
distribution@jagori.org पर ईमेल करें
011–26691219 / 26691220 पर फोन करें
सहयोग राशि : 150/– रुपए

जागोरी
JAGORI

अंधेरे में अकेले बाहर मत निकलो
इससे मर्दों को शह मिलती है।
किसी भी वक्त अकेले मत निकलो
हर सूरत में कुछ मर्दों को शह मिलती है
घर के अंदर मत रहो
रिश्तेदार और मेहमान दोनों ही बलात्कार कर सकते हैं।
बगैर कपड़ों के मत रहो
इससे मर्दों को शह मिलती है।
कपड़े मत पहनो
हर तरह के कपड़ों से कुछ मर्दों को शह मिलती है।
बचपन से बचो
कुछ बलात्कारी बच्चियाँ पसंद करते हैं।
बुढ़ापे से बचो
कुछ बलात्कारी बुजुर्ग औरतों पर वार करते हैं।
पिता, दादा, चाचा, मामा, जीजा, भाई मत रखो
ये वो रिश्तेदार हैं जो अक्सर घर की जवान औरतों से
बलात्कार करते हैं।
पड़ौसी मत रखो
ये अक्सर बलात्कार करते हैं।
शादी मत करो
शादी में बलात्कार जायज़ है।
मगर, अगर पूरी हिफ़ाज़त चाहती हो तो बेहतर है
ज़िंदा मत रहे!

साभारः लंदन रेप क्राईसिस सेंटर, *"बलात्कार से बचाव के लिए मार्गदर्शन"*
अनुवादः कमला भसीन